ISSN No. 2582-9548

nbt.india

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष – 7 ◆ अंक -4 ◆ जुलाई - अगस्त 2022 ◆ मूल्य ₹40.00

आज़ादी का अमृत महोत्सव विशेषांक

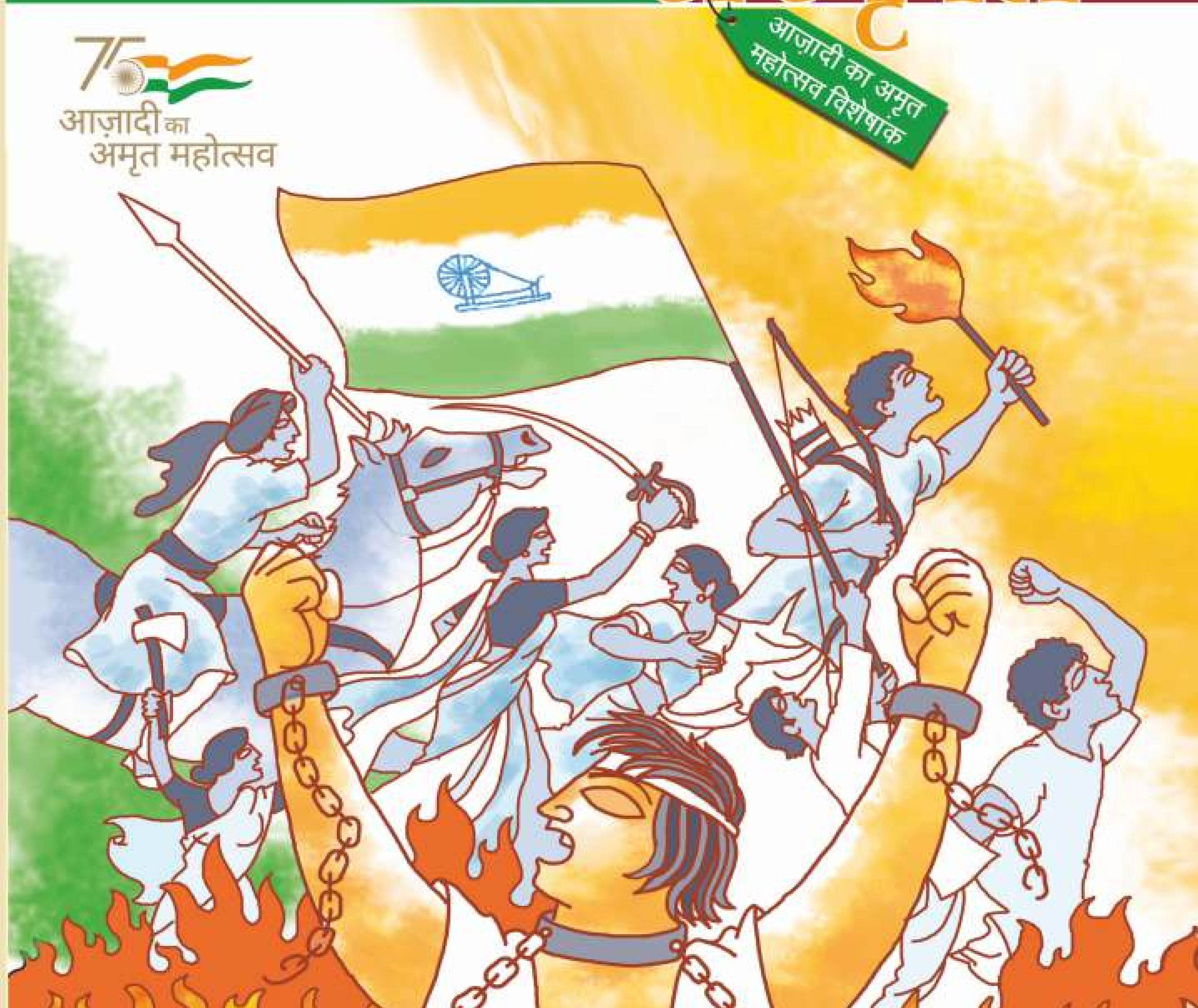

- विलक्षण क्रांतिवीर डूँगजी–जवाहरजी
- बिलाशी जंगल सत्याग्रह
- मुजफ्फरपुर बम कांड
- अमर क्रांतिकारी भागीरथ सिलावट
- हमारे वैज्ञानिकों ने भी झेला था उत्पीड़न

CSIR CRRI

सीएसआईआर–केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ प्रमाणित आरएंडडी प्रयोगशाला)

राजभाषा गृह पत्रिका "सड़क दर्पण"

राजभाषा हिंदी का प्रचार एवं जन-मानस में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार

सड़क दर्पण

- ❖ वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेख
- ❖ जनमानस के लिए लोक रूचि के विषय
- ❖ संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी
- ❖ संस्थान के अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) संबंधित जानकारी
- ❖ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलु
- ❖ हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति
- ❖ समसामयिक जानकारी

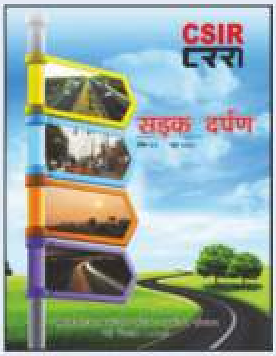

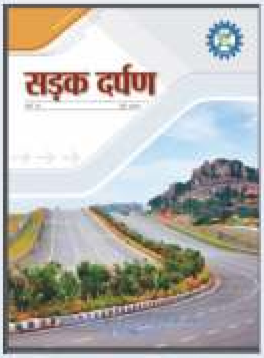

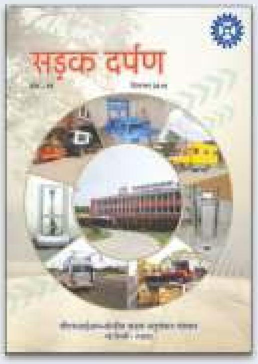

संपर्क -

संपादक, 'सड़क दर्पण'
राजभाषा अनुभाग, सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान
दिल्ली-मथुरा मार्ग, डाकघर सीआरआरआई, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26929175, 26831760, 26832325, 26832427/165
ई-पत्रिका का लिंक : **https://www.crridom.gov.in/publications/magazine**

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-7; अंक-4; जुलाई-अगस्त, 2022

>> आजादी का अमृत महोत्सव विशेषांक <<

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, मोहन शर्मा

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
पार्थ सेनगुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* — 2
लेख — **विलक्षण क्रांतिवीर डूँगजी-जवाहरजी**—*भगवती प्रसाद गौतम* — 4
आलेख — **आजादी के अप्रतिम योद्धा कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'** —*डॉ. वीरेन्द्र आज़म* — 7
आलेख — **पश्चिमी उड़ीसा की मदर टेरेसा : पार्वती गिरी**—*वर्षा सक्सेना* — 10
लेख — **बिलाशी जंगल सत्याग्रह**—*ध्रुव सचिन पटवर्धन* — 12
लेख — **निलहे किसानों के लिए महेश्वर प्रसाद ने छोड़ा संपादकत्व**—*पुष्यमित्र* — 15
लेख — **स्वतंत्रता सेनानी स्वामी कृष्णानंद जी**—*डॉ. कमल के. प्यासा* — 18
आलेख — **अमर क्रांतिकारी भागीरथ सिलावट**—*संध्या सिलावट* — 21
लेख — **बुंदेलखंड का जलियाँवाला बाग : चरण पादुका**—*पंकज चतुर्वेदी* — 24
आलेख — **हमारे वैज्ञानिकों ने भी झेला था उत्पीड़न** —*डॉ. मनीष मोहन गोरे* — 26
लेख — **महान स्वतंत्रता सेनानी बारींद्र कुमार घोष**—*डॉ. पंकज साहा* — 29
शब्द ज्ञान — **आओ भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32
लेख — **बाल स्वातंत्र्य सेनानी कुमार शिरीष पुष्पेंद्र मेहता** —*उद्धव दिलीप गाड़े* — 34
आलेख — **अंडमानी आदिवासियों का स्वातंत्र्य संघर्ष : अबरडीन की लड़ाई**—*डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी* — 36
लेख — **मुजफ्फरपुर बम कांड**—*डॉ. रश्मि कुमारी* — 39
लेख — **वीर शहीद गुण्डाधुर**—*इंदु वर्मा* — 41
लेख — **दूसरा जलियाँवाला बाग बना रायबरेली का मुंशीगंज** —*विजय कुमार 'शाश्वत'* — 44
आलेख — **'रेत समाधि' को बुकर पुरस्कार** —*आशीष कुमार पाण्डेय* — 46
पुस्तक समीक्षा — 47
पुस्तकें मिलीं — 59
साहित्यिक गतिविधियाँ — 61

स्थानीय इतिहास राष्ट्रीय इतिहास का पूरक है

इतिहास की व्यापक परिधि में स्थानीय इतिहास उपेक्षित रहता है, पर इतिहास केवल राष्ट्रीय ही नहीं होता, वह क्षेत्रीय/स्थानीय भी होता है, यही कारण है कि भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी ने क्षेत्रीय/स्थानीय इतिहास लेखन के महत्व को रेखांकित किया है।

इतिहास क्या है? किसी भी घटना का केवल होना और उसका लेखन कर देना इतिहास नहीं है। इतिहास तब बनता है जब कोई घटना या व्यक्ति मानव-जीवन अथवा राष्ट्रीय जीवन को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं और समय की धारा को बदलती है। एक विचार यह भी है कि इतिहास व्यक्तियों का नहीं, समाज का होता है। हेनरी पायरे का कथन है कि "इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों और उपलब्धि की गाथा है।" राधाकृष्णन के अनुसार इतिहास 'राष्ट्र की स्मरणशक्ति' है। स्पष्ट है कि इतिहास व्यक्ति और समाज के लिए महत्वपूर्ण है। हम अतीत का जब जिज्ञासापूर्वक अध्ययन करते हैं तब अतीत की घटनाएँ, व्यक्ति और उस समय का समाज हमारे साथ उसी प्रकार जुड़ जाते हैं जिस प्रकार वर्तमान समय की घटनाएँ और समाज हमारे साथ जुड़ते हैं।

इतिहास के राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय होने का विचार मूलतः भूगोल के साथ जुड़ा है। भूगोल, इतिहास का आधार है। भूगोल ही इतिहास को वैश्विक इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास और क्षेत्रीय/स्थानीय इतिहास के रूप में प्रस्तुत करता है। वैसे 'इतिहास' शब्द का प्रयोग कई अर्थों और संदर्भों में होता है। यह व्यक्तियों का, परिवारों का, सभ्यताओं का, संस्कृतियों का, समाजों का, पशु-पक्षियों का भी होता है। इसी कारण हम सभ्यताओं के इतिहास या परिवार के इतिहास की भी बात करते हैं।

क्षेत्रीय इतिहास लेखन, इतिहास की एक प्रमुख शाखा/विधा है। जब भी राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक उथल-पुथल, क्रांतियाँ और संघर्षों के कारण देश में राजनीतिक और सामाजिक चेतना का उदय होता है, तब राष्ट्रीय के साथ क्षेत्रीय नेतृत्व भी विभिन्न क्षेत्रों में सामने आता है जो स्थानीय जनचेतना को विकसित भी करता है और उसका नेतृत्व भी करता है। कई बार स्थानीय समस्याएँ या सरकार विरोध भी ऐसी परिस्थितियों को निर्मित करते हैं, जिसके कारण जननेताओं का प्रादुर्भाव होता है। ये जननेता किसी भी प्रकार नेतृत्व क्षमताओं में कम नहीं होते। ये स्थानीय नायक होते हैं तथा जनमानस के मन में उनके प्रति आदरभाव होता है।

हमारे देश में क्षेत्रीय/स्थानीय इतिहास लेखन की कोई सुनिश्चित परंपरा नहीं है, यद्यपि वाचक परंपरा में नायकों और राजाओं के शौर्य और पराक्रम का वर्णन हमें मिलता है। लिखित रूप में राजाओं की वंशावलियों, कार्यों का वर्णन भी मिलता है तथापि उनमें तथ्यात्मकता को ढूँढ़ना पड़ता है। पिछले कुछ दशकों से भारत में विभिन्न विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय/स्थानीय विषयों पर शोधकार्य किया जा रहा है। यह स्वागत योग्य है। शोध कार्य के परिणामस्वरूप कई नए तथ्य और अनजाने रहे नायकों के संबंध में जानकारी समाज के सम्मुख आई है।

स्थानीय इतिहास लेखन आज के समाज की आवश्यकता है। पिछले 100-200 वर्षों का ही उदाहरण लें। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले और उसे नेतृत्व देने वाले कितने राष्ट्रीय/स्थानीय योद्धाओं/सेनानियों की हमें जानकारी है। हम अधिक-से-अधिक 5-10 नाम बता पाएँगे। ज्यादा हुआ तो 15-20 नाम बता पाएँगे। ये वे नाम हैं जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के साथ मिलकर संघर्ष किया। इन कुछ नेतृत्वकर्ताओं के अलावा संग्राम में भाग लेने वाले अनजाने कितने ही (Unsung Heroes) नाम हम उस समय जान सकेंगे, जब स्थानीय इतिहास लेखन होगा। राजेंद्र श्रीवास्तव द्वारा लिखित एक पुस्तक है—'महासमर के नायक'। इस पुस्तक में 1857 की क्रांति में राष्ट्रीय/स्थानीय स्तर पर नेतृत्व करने वाले 60 से अधिक नायकों का जीवन परिचय संकलित है। निश्चित ही यह सूची अधूरी है। विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय इतिहास अध्ययन और शोध इस सूची में और भी वृद्धि कर सकेगा। इसी प्रकार एक पुस्तक है—'ग्वालियर के गली, बाजार, मुहल्ले', जिसके लेखक माता प्रसाद शुक्ल हैं। इस पुस्तक में ग्वालियर के मुहल्ले, गलियों और सड़कों का वर्णन है। पुस्तक में बहुत ही रोचक और तथ्यात्मक जानकारी की भरमार है। कोई मुहल्ला कैसे बसा, प्रारंभिक स्थिति

क्या थी, उसका विकास कैसे हुआ, उसका इतिहास क्या है? सब-कुछ इस पुस्तक में है। जिस प्रकार एक शहर के स्थापित होने, विकसित होने और बढ़ने का इतिहास होता है, उसी प्रकार उसके मुहल्लों, सड़कों का भी इतिहास होता है। इस प्रकार का लेखन अभिलेखात्मक भी होता है जिसकी आज आवश्यकता है। साथ ही, इसे जानना बड़ा रोचक है। यह स्थानीय लगाव को पैदा करता है। इस प्रकार के शोध अन्य शहरों के भी हुए हैं तथा और भी होने चाहिए। यह स्थानीय इतिहास का भाग है।

अंग्रेजों के विरोध में 1857 की क्रांति को हम जानते हैं, पर यह भी जानना आवश्यक है कि 1757 से 1857 के मध्य 100 वर्षों में ब्रिटिश सत्ता के विरोध में लगभग 100 से अधिक विद्रोह हुए हैं जो जनजातियों तथा अन्य वर्गों ने किए हैं। उनका नेतृत्व क्षेत्रीय/स्थानीय व्यक्तियों ने, जनजातियों तथा अन्य वर्गों ने किया है। इनका पूर्ण वर्णन उस समय सामने आएगा, जब क्षेत्रीय इतिहास लिखा जाएगा।

वर्तमान की चर्चा करें तो केवल राष्ट्रीय स्तर के इतिहास लेखन का एक परिणाम यह हुआ है कि हमें राष्ट्रीय स्तर की जानकारी तो है, पर हमें अपने क्षेत्र के महापुरुषों, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों, शिक्षकों, विद्वानों, लेखकों, कवियों, उद्योगपतियों आदि की जानकारी नहीं है। उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश या उत्तर प्रदेश या ओड़िशा या तमिलनाडु या किसी भी राज्य के नागरिकों, यहाँ तक कि उच्च शिक्षा प्राप्त छात्रों को यह तो मालूम है कि भारत के संविधान निर्माण के लिए जो संविधान सभा गठित हुई थी, उसमें डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. भीमराव आंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि सदस्य थे, पर उन्हें प्रायः यह नहीं मालूम कि उनके राज्य से संविधान सभा में कौन सदस्य था, उनकी क्या भूमिका रही। ऐसा इसलिए है कि हमने क्षेत्रीय/स्थानीय इतिहास लेखन पर जोर नहीं दिया तथा उसे पाठ्यपुस्तकों में भी स्थान नहीं दिया। राष्ट्रीय स्तर पर इतिहास की बहुत-सी ऐसी घटनाएँ तथा संघर्ष हुए हैं जिन्हें देश भूलता जा रहा है। हम मान चुके हैं कि स्वाधीनता संग्राम 15 अगस्त, 1947 को स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही समाप्त हो गया। अतः हमें वहाँ तक का संघर्ष याद है, पर उसके बाद गोवा मुक्ति आंदोलन और उसमें शहीद हुए स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के संबंध में हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। पुर्तगाल सरकार द्वारा किए गए दमन की जानकारी हमको कम है। गोवा मुक्ति आंदोलन और संघर्ष को राष्ट्रीय स्तर पर लाने की आवश्यकता है तथा उसे पाठ्यक्रम का भाग बनाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार पांडिचेरी फ्रांस की सरकार से कैसे मुक्त हुआ, यह भी जानने की आवश्यकता है।

माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के अवसर पर आह्वान किया कि इस अवसर पर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले उन अज्ञात नायकों के जीवन को हमें सामने लाना चाहिए, जिन्होंने अपने आपको राष्ट्र के लिए समर्पित किया। उन भूले-बिसरे नायकों के बलिदानी जीवन और पवित्र चरित्र को राष्ट्र के सम्मुख लाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े भूले-बिसरे स्थानों की जानकारी भी समाज के सामने लानी चाहिए। अल्पज्ञात तथ्य तथा राजनीतिक, राष्ट्रीय, आर्थिक पहलुओं से संबंधित नए दृष्टिकोण सामने आने चाहिए। प्रधानमंत्री जी के आह्वान को ध्यान में रख कर 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, शिक्षा मंत्रालय' ने एक निर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से ऐसे 75 युवा लेखकों का चयन किया है जो देश के भूले-बिसरे जननायकों के जीवन और उनके कृतित्व को देश के सामने लाएँगे। इस योजना में जिसे 'प्रधानमंत्री युवा मेंटरशिप योजना' नाम दिया है, अंग्रेजी सहित सभी 22 भाषाओं में लेखन कार्य हो रहा है। इस योजना में सबसे कम आयु (18 वर्ष) के युवा लेखक भी हैं। निश्चित ही इस योजना से क्षेत्रीय इतिहास लेखन को प्रोत्साहन मिलेगा।

क्षेत्रीय इतिहास लेखन को सीमित अर्थों में नहीं लिया जाना चाहिए। वह राजनीतिक घटनाओं और नायकों के वर्णन तक सीमित नहीं है, इतिहास समाज सुधारकों, शिल्पकारों, साहित्य, संगीत, कला से, नगरों के विकास से भी जुड़ा है। इस रूप में इतिहास की परिधि तथा विषय-वस्तु व्यापक है। स्थानीय इतिहास लेखन में हमें कुछ सावधानियों की आवश्यकता है। स्थानीय इतिहास लिखते समय उन व्यक्तियों को भी सम्मिलित करने के लिए स्थानीय दबाव रहता है जिनकी कोई ऐतिहासिक भूमिका नहीं है। इसके लिए तथ्यों को भलीभाँति परखा जाना चाहिए। इसी प्रकार शोधकर्ता को स्थानीयता को अधिक महिमा-मंडित करने से भी बचना चाहिए। हमारा लेखन भावनात्मक नहीं, तथ्यात्मक होना चाहिए। उपलब्ध प्रमाणों की सत्यता की पूरी जाँच-परख करने की आवश्यकता है, तभी वह निष्पक्ष लेखन होगा। ऐतिहासिक तथ्यों की विश्लेषणात्मक व्याख्या इतिहास लेखन का आधार है।

स्थानीय इतिहास लेखन वास्तव में कोई अलग इतिहास लेखन नहीं है, यह राष्ट्रीय इतिहास लेखन का पूरक है। यह संभव नहीं है और अपेक्षित भी नहीं है कि राष्ट्रीय इतिहास में स्थानीय इतिहास को पूरा स्थान दिया जाए। हाँ, संदर्भों की बात अलग है, पर यह भी उचित नहीं है कि हम स्थानीय इतिहास की पूर्णतः उपेक्षा करें। स्थानीय इतिहास भी उतना ही महत्व का है जितना राष्ट्रीय इतिहास।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

विलक्षण क्रांतिवीर डूँगजी-जवाहरजी

देश की आज़ादी (1947) से यही कोई एक सदी पूर्व ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विभिन्न दिशाओं में बगावत की आहट शुरू हो गई थी। ऐसी ही लहर में राजस्थान के कई ठिकानों, कबीलों के सरदारों ने अंग्रेजों के नुमाइंदों और चाटुकार अफसरों पर छापामार हमले बोल दिए। इस राष्ट्रव्यापी अभियान में असाधारण त्याग व बलिदान की गाथाएँ रचने वाले अनेक ऐसे क्रांतिकारी योद्धा भी सामने आए, जिनकी गोरी-काली पलटनों से भारी भिड़ंत हुई। यहाँ तक कि वे संकट की घड़ी में जरूरतमंदों के जीवन रक्षक भी

साबित हुए, पर न तो उनका इतिहास के पन्नों पर उल्लेख हुआ और न ही कलमकारों की नजर उन तक पहुँच सकी।

ब्रिटिश शासन की नींद उड़ा देने वाले ऐसे ही प्रखर सेनानी थे डूँगजी-जवाहरजी। राजस्थान के शेखावाटी अंचल के गाँव बठोठ-पाटोदा के शेखावत घराने में जन्मे डूँग सिंह शेखावत के ही भतीजे थे जवाहर सिंह। चाचा-भतीजे की इस जोड़ी में सदैव चोली-दामन का साथ रहा। कहा जाता है कि सीकर के राव राजा कल्याण सिंह और डूँग सिंह के चाचा रामप्रताप सिंह व भैरव सिंह के बीच किसी बात को लेकर अनबन हो गई। संभवतः उसी के बाद डूँगजी-जवाहरजी की यह जोड़ी बागी हो गई।

तभी से उन्होंने निष्ठुर अंग्रेजों के खज़ानों और भ्रष्ट आचरण से अपने भंडार भरने वाले सेठों-साहूकारों पर 'धाड़ा' (डाका) डालना शुरू कर दिया। खासियत यह कि उन्होंने तथाकथित धनियों के किसी भी प्रकार के धन-माल से परहेज नहीं किया। रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, खाद्य सामग्री, और तो और पशुधन भी। मगर लूट में जो भी मिलता, भूखों-प्यासों, निर्धनों, दुखियों, लाचारों, वंचितों में बाँटने में वे कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। यों तो उनकी जोड़ी 'धाड़ेती' यानी डाकू जैसे विशेषणों से ही जानी जाती रही, लेकिन उनके दिलों में जन-कल्याण का जो ध्येय निहित होता था, उसी वजह से वे समय के साथ लोक नायक और लोक देवता के रूप में प्रणम्य और पूजनीय हो गए।

उनकी कहानियाँ शेखावाटी में ही नहीं, मेवाड़ इलाके में भी सुनने को मिलती हैं। पहली बार एक राष्ट्रीय साहित्यकार सम्मेलन में भीलवाड़ा जाने का मौका मिला। यह 2004-05 का दौर रहा होगा। आयोजन-स्थल (एक बड़ी धर्मशाला) पर उपस्थित रचनाकारों को किन्हीं स्थानीय सज्जन ने उनके दबदबे और दानशीलता के बारे में बड़े ही रोमांचक

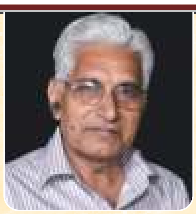

भगवती प्रसाद गौतम

जन्म : 28 सितंबर, 1943; कोटा, राजस्थान।

शिक्षा : एम.ए. (चित्रकला), बी.एड.।

संप्रति : अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी के पद से सेवानिवृत्ति के बाद साहित्य-सृजन के साथ-साथ शैक्षिक-सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय।

प्रकाशन : आठ पुस्तकों सहित राष्ट्रीय स्तर की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में गीत, गजल, कविताएँ, लेख, कहानियाँ, व्यंग्य एवं बाल-रचनाएँ प्रकाशित; आकाशवाणी/दूरदर्शन से विविध रचनाएँ, वार्ताएँ, परिचर्चाएँ प्रसारित।

सम्मान : राजस्थान साहित्य अकादमी का प्रथम शंभूदयाल सक्सेना बाल-साहित्य पुरस्कार, साहित्यश्री सम्मान अलंकरण, गौरीशंकर कमलेश स्मृति सम्मान आदि।

संपर्क : मोबाइल– 9461182571

ईमेल– bpgautam.1943@gmail.com

अंदाज़ में काफी-कुछ बताया था। कालांतर में बात आई-गई हो गई, मगर बाद में (2018) अनायास ही डाक से एक पुस्तक मिली। पुस्तक थी कई ग्रंथों के प्रणेता दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' कृत 'डूँगजी-जवाहरजी रो गीत', वह भी उनके सुपुत्र फतहसिंह लोढ़ा (यतींद्र साहित्य सदन, भीलवाड़ा) के सौजन्य से। उससे गुजरते हुए लगा कि लगभग सात दशक पूर्व बदनोर निवासी नाथू बंजारा और

> **ध्यातव्य है कि 'बुंदेले हरबोलों' की भाँति ही राजस्थान में भी लोक गायकों के कुछ ऐसे कबीले या समुदाय रहे हैं जो देश में घूम-घूमकर अपने नायकों का यशोगान करते हैं। जिस रीति-नीति से वे पाबू जी, देवनारायण जी, हीरामन जी आदि से जुड़े गीत अपनी ही शैली में गाते हैं और लोक जीवन में अद्भुत आनंद व ऊर्जा का संचार करते हैं, उसी प्रकार वे डूँगजी-जवाहरजी के गीत भी लोक-वाद्यों की लय-ताल पर पूरे मनोयोग और मान-सम्मान से सुनाते फिरते हैं।**

कोटड़ी निवासी पप्पू रेबारी के मुँह से सुनकर जो गीत और उसके अंश लिपिबद्ध किए गए और उस उपक्रम में श्रद्धेय 'अरविंद' जी का जो श्रम व्यतीत हुआ, वह सार्थक भी रहा और अभिनंदनीय भी।

ध्यातव्य है कि 'बुंदेले हरबोलों' की भाँति ही राजस्थान में भी लोक गायकों के कुछ ऐसे कबीले या समुदाय रहे हैं जो देश में घूम-घूमकर अपने नायकों का यशोगान करते हैं। जिस रीति-नीति से वे पाबूजी, देवनारायणजी, हीरामनजी आदि से जुड़े गीत अपनी ही शैली में गाते हैं और लोक जीवन में अद्भुत आनंद व ऊर्जा का संचार करते हैं, उसी प्रकार वे डूँगजी-जवाहरजी के गीत भी लोक-वाद्यों की लय-ताल पर पूरे मनोयोग और मान-सम्मान से सुनाते फिरते हैं। इन गीतों से यह भी साबित होता है कि दोनों चाचा-भतीजे जितने पराक्रमी थे, उतने ही संवेदनशील और परोपकारी भी थे।

'अरविंद' जी के सुपुत्र फतहसिंह लोढ़ा के मुताबिक, उन्होंने अत्याचारी अंग्रेजों पर वार करने से पहले शेखावाटी-रामगढ़ के सेठों की ऊँटों पर लदी अनगिनत बोरियों की लंबी कतारों को निशाना बनाया और बोरियों में भरा हुआ मूँग धरती पर बिखेर दिया। पास-दूर की जनता बरतनों में मूँग भर-भर ले गई और डूँगजी-जवाहरजी की जय-जयकार करती रही। यही नहीं रामगढ़ के सेठों के परिजनों के पास जो भी जेवर था, उसे भी छीन-झपटकर गरीबों में बाँट दिया।

यही वह कालखंड था जब गोरे भारत-भूमि पर अलग-अलग दिशाओं में छावनियाँ खड़ी कर अपना सिक्का जमाने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। ऐसे में ही चाचा-भतीजे की नजर आगरा और नसीराबाद की छावनियों पर भी जा लगी। अब तक उनका अपना खुद का दल-बल भी बहुत मजबूत हो चुका था। ऐसे हालात में जब वे बीकानेर-शेखावाटी सीमा पर पहुँचे तो उसी ताकत के बूते उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश-इंडियन आर्मी के मेजर फोर्स्टर की फौजी टुकड़ियों के ऊँट-घोड़े सहित संपूर्ण युद्ध सामग्री अपने कब्जे में ले ली।

यह इतनी बड़ी घटना थी कि गोरी सरकार सहम उठी। राजस्थान की रियासतों के राव-राजाओं में भी एक प्रकार का डर फैल गया। अनेक छोटे-बड़े सेठों ने इस घटना के विरुद्ध अपने आकाओं-महाराजाओं के समक्ष रोष जताया। खासतौर पर बीकानेर, जोधपुर, जयपुर जैसी बड़ी रियासतों के नरेशों ने अधीनस्थ सेना-प्रधानों व महकमों को डूँगजी-जवाहरजी दोनों को तत्काल जिंदा या मुर्दा गिरफ्त में लेने के आदेश जारी कर दिए। 'बीकानेर राज्य का इतिहास' (गौरीशंकर हीरानंद ओझा), 'दयालदास की ख्यात', 'पायलेट गैजेटियर ऑफ द बीकानेर स्टेट' में भी इस घटना का, साथ ही दोनों क्रांतिवीरों का उल्लेख मिलता है।

प्रसंगवश बताते चलें कि अंग्रेजों की 'फूट डालो-राज करो' की नीति जग-जाहिर रही। कई राजे-रजवाड़ों ने तो चापलूसी-चाटुकारिकता का रास्ता ही चुन लिया था। वे अपने पद व पदवियों की रक्षा के लिए ठकुर-सुहाती कहने व करने में पीछे नहीं रहे। ऐसे में एक

सच्चाई यह भी है कि अब अंग्रेजों की नींद हराम हो गई थी। वे चाचा-भतीजे को बंदी बनाकर आगरा किले में डालने की योजना बना चुके थे, लेकिन वे अपने इरादे में सफल होते, उससे दो दिन पहले ही इन बहादुर सेनानियों ने विश्वसनीय साथियों—बालिया नाई व लोटिया जाट के जरिए स्थितियों का आकलन करवाया और दल-बल के साथ आगरा कैंट पर हमला बोल दिया। जमकर संघर्ष हुआ, जबरदस्त लूट-पाट हुई और डूँगजी ने लूट का सारा माल पुष्कर पहुँचाकर गरीबों और बेसहारा लोगों में वितरित करवा दिया। इस वीरोचित कार्यवाही का जिक्र करते हुए 'फिरंगी से फिरंट डूँगजी-जवाहरजी' शीर्षक तले लेख (कथानक) में फतहसिंह लोढ़ा लिखते हैं—"इस प्रकार उन्होंने लूट के धन को कभी संचित नहीं किया, गरीबों में बाँटकर यश अर्जित किया। यही प्रमुख कारण रहा कि वे गरीबों के मसीहा समझे जाने लगे।"

इसी यश-कीर्ति के विस्तार के चलते आगरा छावनी और पुष्कर धाम की यात्रा के उपरांत डूँगजी ने अजमेर की राह पकड़ ली, किंतु जब वे गाँव झड़वासा (नसीराबाद के निकट) पहुँचे तो उनके साले

भैरोसिंह ने रास्ता रोक लिया और बड़े अदब से विनती की—“जीजा जी, बहुत दिनों बाद यह संजोग बना है। आज तो हमारा आतिथ्य स्वीकार कर लें। गोठ (भोजन) जीमकर और रात बिताकर चले जाइए।”

डूँगजी मनुहार के कच्चे रहे। रुके तो विशेष मान-सम्मान हुआ। खान-पान में कोई कमी नहीं रही। शराब के दौर चले तो डूँगजी सुध-बुध खोने लगे। बस, मौका देखकर अंग्रेजों का पिट्टू भैरोसिंह असलियत पर आ गया। उसने आनन-फानन सारी जानकारी सरकार तक पहुँचा दी। सरकार तो इसी ताक में थी। बस, फौजी पलटन आई, डूँगजी को लोहे के पिंजरे में डाला और आगरा ले जाकर किले में नजरबंद कर दिया।

पूरे इलाके में यह खबर आग की तरह फैल गई। ऐसे में उनका अपना गाँव बठोठ कैसे अछूता रह जाता? उसी समय उनके भतीजे जवाहरजी भी कहीं से अपना काम कर लौटे ही थे कि देखते ही ‘काकी सा’ यानी डूँगजी की पत्नी शेरनी की भाँति उठ खड़ी हुई,

बोली—“ऐ जवाहर्या, तू कैसा राजपूत है जो तेरा काका ही धूर्त गोरों के चंगुल में यों पड़ा रहे। ये अपने तुर्रे-कलंगी तो उतार फेंक और चोटी गूँथ ले...चोटी...।”

यह ललकार जवाहरजी के दिल पर ऐसी लगी कि उन्होंने आव देखा न ताव और लोटिया जाट, करणिया मीणा, मेड़तिया राठोड़ के अलावा बीदावत, नरुका, पंवार, शेखावत, तंवर आदि कई राजपूतों की नकली बारात बनाकर सीधे आगरा जा पहुँचे। कोई साधु के वेश में किले के बाहर आसन जमा बैठा तो कुछ लोग पूरी चौकसी के साथ आते-जाते शहरवासियों के कार्यकलापों पर नजर बनाए रहे। मगर सही मौके की प्रतीक्षा में पाँच-छह महीने ऐसे ही बीत गए।

आखिर ताजिये निकलने का समय आया और फौजी अफसरों व सिपाहियों पर शहरभर की कानून व्यवस्था का भार आ पड़ा। इसी मौके का फायदा उठाकर जवाहरजी की ‘बारात’ के सदस्य किले पर टूट पड़े। लेकिन अप्रत्याशित घमासान का पता चलते ही अंदर से डूँगजी ने संदेश भिजवाया कि “पहले उन सभी कैदियों को मुक्त कराना है जो पहले से यहाँ अत्याचार सह रहे हैं, उसके बाद ही मुझे बाहर निकालने के बारे में सोचें।”

पहले डूँगजी के आदेश का ही पूरा पालन हुआ और फिर वे सही-सलामत अपने घर जा पहुँचे। इस करारी मात पर अंग्रेज़ राज का सख्त प्रशासन सिर पकड़कर बैठ गया।

अब डूँगजी-जवाहरजी की नजर नसीराबाद पर टिकी थी। वैसे अंग्रेजों के खिलाफ छापामार हमले तो जारी हो ही चुके थे और उन्हीं की वजह से सरकार की बेचैनी बढ़ती ही जा रही थी। माहौल को देख उन्होंने अपना रुख नसीराबाद की ओर किया और छावनी पर ताबड़तोड़ धावा बोल दिया। इस हमले में माल-असबाब के अलावा वे बावन हजार रुपये हथियाने में कामयाब रहे।

यह सब सुनते ही एक बार तो मेजर फोर्स्टर को जैसे साँप ही सूँघ गया, लेकिन उसने फिर से चाचा-भतीजे को बंदी बनाने का प्रण कर लिया। इस अभियान में उसने मघरासर के ठाकुर हरनाथ सिंह और मेहता हरि सिंह के साथ ही महाराजा रतन सिंह (बीकानेर) की फौज की मदद ली। आखिर आपसी तालमेल बिठाकर वह घड़सीसर में मजबूत घेरा बनाने में सफल हो गया। इसी स्थिति को देखकर ठाकुर हरनाथ सिंह ने जवाहरजी को समझा-बुझाकर विश्वास में ले लिया। नतीजा यह हुआ कि वे आत्मसमर्पण करने को मजबूर हो गए और अपना शेष जीवन बीकानेर नरेश की शरण में ही गुजारना पड़ा।

उधर डूँगजी भतीजे के आत्मसमर्पण से बड़े आहत हुए। आखिर वे एक-दूसरे के पूरक ही तो थे। मगर घटनाक्रम ऐसा चला कि उसी साल (1847) के नवंबर माह के सातवें दिन ही वे भी जोधपुर नरेश तख्त सिंह के फौजी लड़ाकों की गिरफ्त में आ गए।...और उसी के बाद नए साल (1848) के शुरुआती दिनों में उनके गिरोह के दूसरे सदस्य भी पकड़े गए। जानकारों और विद्वानों के अनुसार अनगिनत निस्सहायों और निराश्रितों के सहायक व पालनहार डूँगजी इस बार स्वयं निस्सहाय हो गए और अंतिम साँस तक वहीं रियासत के मुख्यालय जोधपुर में ही रहे। उनके मन की टीस को बहुआयामी सृजन के धनी दौलतसिंह लोढ़ा ‘अरविंद’ ने इन शब्दों में व्यक्त किया—

“डूँग न्हार जोधाणो बैठ्यो, ज्वारो बीकानेर।
काका-भतीजा रै मन रैगी, लूटण री अजमेर॥”

विलक्षण क्रांतिवीर डूँगजी-जवाहरजी भले ही ब्रिटिश राज को भारत की धरती से उखाड़ नहीं पाए, लेकिन उसके या उसके नुमाइंदों के छक्के छुड़ाने में कामयाब रहे। यहाँ तक कि अनेक इतिहासविदों और अध्ययनशील देशप्रेमियों ने उन्हें आज़ादी के दीवानों और स्वाधीनता सेनानियों के रूप में ही मान्यता दी। ऐसे अल्पज्ञात नायकों पर अनेक शब्दशिल्पियों ने अपने श्रमसाध्य लेखन में उनके वीरोचित कार्यकलापों का वर्णन तो किया ही है, साथ ही उनकी विशेष जनसेवा की प्रवृत्ति को भी पूरी शिद्दत से रेखांकित किया है। मगर उन पर अब भी अन्यान्य शोध एवं अध्ययन की काफी संभावनाएँ अनुभव होती हैं।

आजादी के अप्रतिम योद्धा कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

स्वतंत्रता आंदोलन में जिन साहित्यकारों-पत्रकारों ने अपनी कलम से देश के सोए जनमानस को जगाने के साथ ही हाथों में तिरंगा थामकर जेल यात्राएँ कीं और अत्याचार सहे, उन साहित्यकारों में पद्मश्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का नाम प्रमुख है। जेल यात्राओं के दौरान उनकी निर्ममतापूर्वक पिटाई की गई ताकि वह पत्रकारिता न कर सकें। उनकी पुस्तक 'तपती पगडंडियों पर पदयात्रा' में इसका विवरण उन्होंने स्वयं लिखा है।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' स्वतंत्रता आंदोलन के अप्रतिम योद्धा रहे। उत्तर प्रदेश में जिला सहारनपुर के कस्बा देवबंद में 29 मई, 1906 को जन्मे कन्हैयालाल ने आठ

डॉ. वीरेन्द्र आज़म

राष्ट्रीय स्तर के प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न पदों पर लगभग साढ़े चार दशक तक कार्यानुभव।

संप्रति : गत 15 वर्षों से हिंदी त्रैमासिक 'शीतलवाणी' के संपादन में संलग्न।

प्रकाशन : विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में आलेख, समीक्षा, कविता, बालगीत, कहानी, लघुकथा, हाइकु, व्यंग्य, रेखाचित्र प्रकाशित।

पुरस्कार : प्रभाकर स्मृति सम्मान, दिल्ली लाईब्रेरी बोर्ड द्वारा 'पत्रिका संपादक सम्मान', वीणा पाणि सम्मान सहित दर्जनों पुरस्कार व सम्मान प्राप्त।

संपर्क : मोबाइल– 9412131404

ईमेल– virendraaazam@yahoo.com

वर्ष की उम्र में ही आजादी के समाचारों में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था। पिता कर्मकांडी ब्राह्मण थे और चाहते थे कि उनका बेटा भी उन्हीं की तरह कर्मकांड सीखकर उनके कार्य में हाथ बटाए, लेकिन बालक कन्हैया ने इससे साफ इनकार कर दिया। पिता रमादत्त ने कन्हैया का प्रवेश खुर्जा के संस्कृत विद्यालय में करा दिया। पढ़ते-पढ़ते ही बालक कन्हैया के मन में स्वतंत्रता के अंकुर फूटने लगे। अतः 15 वर्ष की आयु में ही वर्ष 1921 में गांधीजी के असहयोग आंदोलन में कूद पड़े और 1928 में स्वतंत्रता आंदोलन के लिए अपने आप को पूरी तरह गांधीजी के चरणों में समर्पित कर दिया।

प्रभाकर जी के सुपुत्र अखिलेश जी बताते हैं कि वर्ष 1929 में गांधीजी सहारनपुर आए। सहारनपुर से लौटते हुए उनका कार्यक्रम मुजफ्फनगर जाने का था। प्रभाकर जी ने गांधीजी को अपने गृहनगर देवबंद ले जाने का प्रयास किया और उनके सचिव आचार्य कृपलानी को बताया कि देवबंद में स्वतंत्रता के प्रति समर्पित सैकड़ों लोग चाहते हैं कि गांधीजी कुछ देर के लिए वहाँ भी रुकें और उनका मार्गदर्शन करें, लेकिन आचार्य कृपलानी ने स्पष्ट इनकार कर दिया। इस पर अवसर देखकर प्रभाकर जी ने स्वयं गांधीजी से मुलाकात की और उन्हें देवबंद चलने का निमंत्रण देते हुए कहा कि उनका देवबंद जाना बहुत अनिवार्य है, लोगों में उनके आने को लेकर जबरदस्त उत्साह है। मुजफ्फरनगर जाते हुए देवबंद मार्ग में ही पड़ेगा और यदि वे वहाँ नहीं रुकेंगे तो देवबंद के लोग आपके रास्ते में सड़क पर लेट जाएँगे। गांधीजी ने हँसते हुए कहा—"मैं दूसरों के विरुद्ध सत्याग्रह करता हूँ और तुम मेरे खिलाफ सत्याग्रह करोगे, सत्याग्रही के खिलाफ सत्याग्रह!" और इस तरह गांधीजी ने

प्रभाकर जी की लाईब्रेरी

देवबंद जाने की अनुमति दे दी। हालाँकि आचार्य कृपलानी इस पर नाराज भी हुए। देवबंद पहुँचकर मंडी स्थल पर गांधीजी की सभा हुई जिसमें बड़ी संख्या में लोग जुटे और उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का संकल्प लिया।

वर्ष 1929 में ही प्रभाकर जी ने पत्रकारिता में प्रवेश किया। इटावा से प्रकाशित 'ब्राह्मण सर्वस्व' मासिक पत्रिका के लिए कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' न केवल यदा-कदा लिखा करते थे, बल्कि समय-समय पर संपादक को पत्रिका के संबंध में अपने सुझाव भी भेजा करते थे। एक दिन पत्रिका के संपादक का पत्र प्रभाकर जी को मिला। लिखा था कि इस वर्ष पत्रिका का 'रजत जयंती विशेषांक' प्रकाशित किया जाना है, लेकिन बेटी के विवाह के कारण वह अपने दायित्व का निर्वहन ठीक से नहीं कर पाएँगे। प्रभाकर जी से अनुरोध किया गया था कि रजत जयंती विशेषांक का संपादन वह करें। प्रभाकर जी ने अपनी सहमति दे दी और इस तरह सीधे 'ब्राह्मण सर्वस्व' के संपादक के रूप में प्रभाकर जी ने पत्रकारिता में प्रवेश किया।

स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागेदारी के साथ ही प्रभाकर जी कलम के माध्यम से भी लोगों को आजादी का महत्व समझाते हुए स्वतंत्रता आंदोलन के लिए प्रेरित करने लगे। 12 मार्च, 1930 में गांधीजी ने नमक आंदोलन शुरू किया तो प्रभाकर जी ने उसमें बढ़-चढ़कर भागेदारी की। उन्हें देवबंद से गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। प्रभाकर जी को एक वर्ष का कारावास हुआ। अखिलेश जी के मुताबिक जब प्रभाकर जी जेल जाने लगे तो पिता रमादत्त विचलित हो गए। अकेली संतान वह भी जेल चली जाए तो घर का क्या होगा। पिता ने प्रभाकर जी को धमकी देते हुए कहा कि अगर उन्होंने गिरफ्तारी दी तो वह जहर खा लेंगे। इस पर प्रभाकर जी ने बड़े शांत मन से पिता से कहा कि ठीक है वह जहर खा लें, मैं आपका संस्कार और बाकी तेरहवीं की रस्म पूरी कर 15 दिन बाद जेल चला जाऊँगा। यह सुनकर पिता रमादत्त सन्न रह गए। इस पर प्रभाकर जी की माँ ने पिता को समझाया कि देश की आजादी का मामला है, विचलित न हों, और इस तरह प्रभाकर जी जेल चले गए।

सन् 1932 में गांधीजी ने सत्याग्रह शुरू किया तो प्रभाकर जी भी सत्याग्रह में सक्रिय होने के कारण फिर गिरफ्तार कर लिए गए। इमरजेंसी ऑर्डिनेंस पावर में उन्हें ढाई वर्ष की सजा सुनाई गई, लेकिन गांधीजी द्वारा सत्याग्रह वापस लिए जाने के कारण प्रभाकर जी को जल्दी रिहा कर दिया गया। 1933 में प्रभाकर जी सहारनपुर आ गए और 'विकास साप्ताहिक' के संपादक मंडल में शामिल हो गए। उन दिनों पत्रकारिता करना अंगारों से खेलना था। प्रभाकर जी ने 'विकास' के माध्यम से आजादी की अलख जगाई तो कुछ ही दिनों में 'विकास' अंग्रेज सरकार की आँखों की किरकिरी बन गया। 'विकास' अपने क्षेत्र में अकेला राजनीतिक पत्र था जिसके आलेखों और टिप्पणियों को लोग गंभीरता से लेते थे। 1935 में क्वेटा में भूकंप आया तो प्रभाकर जी ने एक अग्रलेख 'सेवा पर ऑर्डिनेंस' लिखा, जिस पर अंग्रेज सरकार 'विकास' अखबार से चिढ़ गई और अखबार को बंद कर दिया।

कुछ दिनों बाद फिर जैसे-तैसे अखबार शुरू हुआ। वर्ष 1936 में 'विकास' के संपादन का पूर्ण दायित्व प्रभाकर जी पर आ गया। कबाड़ी बाजार स्थित शांति प्रेस में विकास की प्रिंटिंग होती थी। अंबाला रोड पर अपना प्रेस लगाने का काम शुरू हुआ। बड़ी मशीनें मंगाई गईं, लेकिन अर्थाभाव में प्रेस पर काफी कर्ज हो गया। कर्ज से जूझते विकास प्रेस को बचाने के लिए प्रभाकर जी को कचहरी की शरण लेनी पड़ी। अंग्रेज कलेक्टर ने इसे अच्छा अवसर मानकर साहूकारों को तैयार किया कि वे अखबार के खिलाफ डिग्री ले लें ताकि अखबार बंद हो जाए। इसके अलावा हर रोज किसी-न-किसी बहाने प्रेस में पुलिस भेजकर प्रभाकर जी को प्रताड़ित भी किया जाने लगा। लगातार चार साल तक प्रभाकर जी कानूनी दाँव-पेंच के साथ अखबार के लिए जूझते रहे। 97 बार विकास प्रेस को नीलाम करने की कोशिश की गई, लेकिन प्रभाकर जी के बुद्धि कौशल से हर बार यह कोशिश असफल साबित हुई।

इस बीच 1935 में ही प्रभाकर जी ने कांग्रेस की स्वर्ण जयंती पर स्वच्छता से निर्धनता का व्रत ले अपना सब-कुछ दान कर दिया और स्वयं को देश-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। गांधीजी के निर्देश पर स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों में प्रभाकर जी की सक्रिय

दुर्गा भाभी के साथ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

भागीदारी बनी रही। उनकी पत्नी श्रीमती रामकली भी उन गतिविधियों में उनके साथ बराबर सक्रिय रहतीं। यहाँ तक कि शहरों की सभाओं के अलावा गाँव-देहात में भी वह साथ जाती थीं और महिलाओं को स्वदेशी अपनाने तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए प्रेरित करती थीं। 1941 में विकास प्रेस की नीलामी का मामला समाप्त हुआ तो विकास के पुनः प्रकाशन की तैयारी शुरू की गई।

“अखिलेश जी बताते हैं कि देश आजाद होने के बाद सरकार ने मुआवजा देने की घोषणा की तो उन्होंने भी प्रेस के नुकसान संबंधी कागज मुआवजे के लिए तैयार कराए। जब उन्होंने अपने पिता कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के सामने मुआवजे की जानकारी देते हुए हस्ताक्षर के लिए कागज रखे तो प्रभाकर जी ने कहा—“क्या भगतसिंह की माँ को कोई मुआवजा दे सकता है, यदि वह माँ बिना मुआवजे के रह सकती है तो हम क्यों नहीं।” और यह कहते हुए उन्होंने उन कागजों को फाड़कर फेंक दिया।”

उस समय विकास प्रेस बोमनजी रोड पर था। इसी बीच एक बड़ी घटना घटी, पत्नी रामकली का निधन हो गया। स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रियता के चलते देखभाल के अभाव में प्रभाकर जी अपने चार पुत्रों को पहले ही खो चुके थे, लेकिन पत्नी और बच्चों की मृत्यु से भी प्रभाकर जी न तो अपने संकल्प से डिगे और न परिस्थितियों के सामने झुके। दरअसल प्रभाकर जी ने परिवार की अपेक्षा देश और उसकी आजादी को सर्वोपरि रखा। उनके मन में महात्मा मेकस्मिन की यह सूक्ति हमेशा कौंधती रही—'गुलाम देश में दोषों की खेती बिना बोए और सींचे पनपती है।'

सन् 1942 में विकास के प्रकाशन की तैयारी शुरू की गई। उस समय सहारनपुर में कलेक्टर के पद पर एल.जी. लॉयड तैनात था। वह अपनी सरकार के प्रति इतना समर्पित था कि साइकिल पर घूमता था और फटी हुई पैंट पहनता था। जरूरत पड़ने पर उसे अपने हाथ से सिलता था और अपना सारा वेतन वार फंड में देता था। अंग्रेज सरकार द्वारा उस समय कलेक्टरों को गवर्नर के अधिकारी दे दिए गए थे। लॉयड ने सितंबर 1942 में डीआईआर (डिफेंस ऑफ इंडिया रूल्स) के तहत प्रेस पर पाबंदी लगा दी ताकि अखबार का प्रकाशन न हो सके, लेकिन इस पर भी कलेक्टर लॉयड को संतुष्टि नहीं हुई और युद्धकालीन अधिकारों का प्रयोग कर प्रेस का सामान बाहर निकलवा दिया तथा प्रेस को सेना का गोदाम घोषित कर उसमें अनाज भरवा दिया। कई दिन तक प्रेस की मशीनें और अन्य सामान सड़क पर बाहर पड़ा रहा। अंग्रेजों के डर से कोई भी सामान रखने की जगह देने को भी तैयार नहीं था।

09 अगस्त, 1942 को अगस्त क्रांति की शुरुआत हुई। गांधीजी ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया तो पूरा देश अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा हो गया। प्रभाकर जी को भी गिरफ्तार कर लिया गया। जेल से छूटकर आने के बाद प्रभाकर जी ने 'विश्वास' नाम से दूसरे समाचार पत्र का प्रकाशन शुरू किया, लेकिन अंग्रेज सरकार इसकी गरमी भी बरदाश्त नहीं कर सकी और 'विश्वास' पर भी प्रतिबंध लगा दिया, तब प्रभाकर जी ने एक तीसरा अखबार 'आलोक' निकाला। प्रभाकर जी के सुपुत्र अखिलेश साइकिल लेकर हमेशा पिता के साथ रहते थे, वही उनके सहायक थे, वही मुंशी और वही अखबार के वितरण करने वाले। वर्ष 1946 में अंतरिम सरकार बनी तो तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट की सहायता से 'विकास' से प्रतिबंध समाप्त कराया गया, लेकिन 'विकास' का प्रकाशन देश आजाद होने के साथ ही शुरू हो सका। आजाद भारत में 'विकास' का पहला अंक 15 अगस्त, 1947 को ही प्रकाशित हुआ। गणेश शंकर विद्यार्थी को अपना आदर्श मानते हुए 'विकास' ने भय, प्रलोभन और लिहाज के त्रिदोष से मुक्त राह पर अपने कदम बढ़ाने का संकल्प लिया और अंत तक 'विकास' अपने इसी संकल्प के साथ प्रकाशित होता रहा।

अखिलेश जी बताते हैं कि देश आजाद होने के बाद सरकार ने मुआवजा देने की घोषणा की तो उन्होंने भी प्रेस के नुकसान संबंधी कागज मुआवजे के लिए तैयार कराए। जब उन्होंने अपने पिता कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के सामने मुआवजे की जानकारी देते हुए हस्ताक्षर के लिए कागज रखे तो प्रभाकर जी ने कहा—“क्या भगतसिंह की माँ को कोई मुआवजा दे सकता है, यदि वह माँ बिना मुआवजे के रह सकती है तो हम क्यों नहीं।” और यह कहते हुए उन्होंने उन कागजों को फाड़कर फेंक दिया।

प्रभाकर जी को पद्मश्री से अलंकृत करते राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने आंदोलनों में भागीदारी कर तथा अपनी कलम के माध्यम से लगातार आजादी की अलख जगाई। वे प्रथम श्रेणी के पत्रकार और साहित्यकार रहे। उनकी देश-सेवा और पत्रकारिता व साहित्यिक अवदान को देखते हुए उन्हें वर्ष 1990 में पद्मश्री से विभूषित किया गया। 'जिन्दगी मुस्कुराई', 'बाजे पायलिया के घुँघरू', 'जिंदगी लहलहाई', 'महके आँगन चहके द्वार', 'दीप जले शंख बजे' तथा 'माटी हो गई सोना' आदि उनकी कृतियाँ हिंदी साहित्य की धरोहर हैं। उन्हें 'रिपोर्ताज जनक और शैलीकार' कहा जाता है।

पश्चिमी उड़ीसा की मदर टेरेसा : पार्वती गिरी

आज हम जिस स्वतंत्र भारत में साँस ले रहे हैं, उसके पीछे अनेक वीरों और वीरांगनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें से अधिकांश लोग ऐसे हैं जिन्हें हम जानते भी नहीं और यदि जानते भी हैं तो इनकी प्रसिद्धि भारत के सिर्फ एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रह गई। ऐसे ही लोगों में आती हैं पार्वती गिरी, जिन्हें उड़ीसा में तो पहचान मिली, लेकिन अन्य राज्यों में गिने-चुने लोग ही उनके बारे में जानते हैं। साधारण परिवार में जन्मी पार्वती के बारे में किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी कि वे आज़ाद भारत के निर्माण में इतनी अहम भूमिका निभाने वाली हैं।

'पश्चिमी उड़ीसा की मदर टेरेसा' कही जाने वाली पार्वती गिरी का जन्म 19 जनवरी, 1926 को राज्य के सम्बलपुर जिले के एक छोटे से गाँव में हुआ था। पार्वती के पिता, धनंजय गिरी एक साधारण

व्यक्ति थे तो वहीं उनके चाचा रामचंद्र गिरी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रसिद्ध नेताओं में से एक थे। पिता धनंजय ने पुत्री की शिक्षा के लिए एक नजदीकी विद्यालय में व्यवस्था की, लेकिन पार्वती का मन अपने चाचा की देशभक्ति से ओतप्रोत बातों में अधिक रमता था। सन् 1937 ई. में गाँव में हुई कांग्रेस सदस्यों की एक बैठक में पहली बार पार्वती ने हिस्सा लिया। उस वक्त वो कक्षा तीन की छात्रा थीं। इस बैठक में दुर्गा प्रसाद गुरु, लक्ष्मी नारायण मिश्र और भागीरथी पटनायक जैसे प्रसिद्ध नेताओं ने भाग लिया। उन लोगों के आज़ादी के प्रति जुनून को देखकर मात्र 11 वर्ष की पार्वती ने स्कूल का त्याग करने का निश्चय कर लिया और प्रण लिया कि वे भी भारत माता की आज़ादी के लिए हर संभव प्रयास करेंगी। उनके पिता के नाराज़ होने के बाद भी वो रुकी नहीं और गाँव-गाँव जाकर लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक और आज़ादी हासिल करने के लक्ष्य के लिए एकत्र करने लगीं। आस-पास के गाँवों में जाकर वे वहाँ के निवासियों से बात करतीं और अपने चाचा से सुनी हुई बातों को दोहरातीं। सन् 1938 ई. में गाँव में एक बार फिर बैठक हुई और इस बार सभी आमंत्रित नेताओं ने पार्वती के कामों से खुश होकर उन्हें पार्टी का सदस्य बनाने की कोशिश की। शुरू में पिता धनंजय गिरी ने इस बात से इनकार कर दिया क्योंकि उनकी नज़र में पार्वती अभी बहुत छोटी थीं। वे नहीं चाहते थे कि पार्वती आंदोलन में भाग लेने के लिए देश के कोने-कोने में भटकें, लेकिन अंत में उन्हें अपनी पुत्री के राष्ट्रप्रेम के आगे झुकना ही पड़ा। यह वक्त पार्वती गिरी के जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था।

जिस समाज में महिलाओं को अपने घर से बाहर निकलने की भी इजाजत नहीं थी, उस समाज में पार्वती का अपने गाँव से किसी और शहर में जाना, उस वक्त की महिलाओं के लिए एक प्रेरणा बन गया। इसी प्रेरणा की वजह से पार्वती के साथ गाँव की एक अन्य

वर्षा सक्सेना

जन्म : 02 अगस्त, 1996

शिक्षा : हिंदी साहित्य और समाजशास्त्र में स्नातक। इनकी रुचि समाजोन्मुख कहानियाँ एवं कविता लेखन में रही है। इनकी कई रचनाएँ प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

संपर्क : मोबाइल– 9696184492

ईमेल– varshasaxena403@gmail.com

विधवा महिला प्रभावती भी जयपुर स्थित बड़े आश्रम पहुँची। इस आश्रम का संचालन-भार रमा देवी चौधरी के हाथों में था। यहाँ आने के बाद रमा देवी के सान्निध्य में उन्हें वो सब सिखाया गया जिससे वे आत्मनिर्भर महिला बन सकीं। 1940 ई. में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू होने के बाद वे अपने गाँव वापस लौट आईं और लोगों को आज़ादी के लिए प्रेरित करने के साथ ही उन्हें वो सब सिखाने लगीं, जो उन्होंने आश्रम में सीखा था। वो उन्हें चरखा चलाना और कपड़ा बुनना सिखातीं। उन्होंने लोगों को एकजुट होना सिखाया, आज़ाद भारत की उज्ज्वल तस्वीर दिखाकर आंदोलन में भाग लेने के लिए सहमत किया।

गाँव के लोगों में आत्मनिर्भरता लाने का हर प्रयास पार्वती के द्वारा किया गया। जहाँ एक तरफ उन्होंने महात्मा गांधी के खादी आंदोलन में भाग लिया और खादी वस्त्र धारण किए, वहीं दूसरी ओर विनोबा भावे के द्वारा शुरू किए गए भूदान आंदोलन में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

उनकी जिंदगी का अगला महत्वपूर्ण पड़ाव था बरगढ़ की घटना। बरगढ़ के एसडीओ ऑफिस में पार्वती कुछ अन्य पुरुष साथियों के साथ घुस गईं। वहाँ उन्होंने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ नारेबाजी की और जबरन एसडीओ की कुरसी पर बैठ गईं। उनके विरोधी तेवर देखकर अंग्रेज सरकार परेशान हो गई और उन्हें गिरफ्तार करने के आदेश दे दिए। पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और सजा के रूप में उन्हें दो वर्ष जेल में बिताने पड़े। इस वक्त वो केवल 16 वर्ष की थीं इसलिए नाबालिग होने के कारण अंग्रेज सरकार उन्हें ज्यादा वक्त तक जेल में कैद नहीं रख पाई। कहते हैं कि हीरे को तराशने के लिए हीरे पर कई वार जरूरी होते हैं, ऐसा ही हुआ पार्वती के साथ। जेल की प्रताड़ना सहने और वहाँ से आने के बाद उनका आज़ादी के प्रति जुनून और अधिक बढ़ गया और इस बार उन्होंने बरगढ़ के कोर्ट को अपना लक्ष्य बनाया। वो कोर्ट के बार में मौजूद वकीलों से अपील करने पहुँची थीं कि वे सभी अंग्रेजों के खिलाफ खड़े हों और कोर्ट का त्याग कर दें। अपने छोटे से भाषण के बाद जब उन्होंने देखा कि कुछ वकील अब भी अंग्रेजों और ब्रिटिश सरकार का समर्थन कर रहे हैं तो उन्होंने अपनी चूड़ियाँ उतारकर उनके हाथों में रख दीं और कोर्ट से बाहर आ गईं। उनका यह कदम देखकर उन वकीलों के सिर शर्म से झुक गए।

ऐसे ही अनेक साहस से भरे कामों को करके पार्वती गिरी लोगों के लिए एक उदाहरण बन गईं कि जब आप कुछ पाने की ठान लेते हैं तो कोई भी वजह आपको रोक नहीं सकती। भारत की आज़ादी के वक्त वो 21 वर्ष की थीं। आज़ादी दिलाने के बाद 1950 ई. में उन्होंने अपनी शिक्षा को पूर्ण करने का निश्चय किया और प्रयाग महिला विद्यापीठ, इलाहाबाद में प्रवेश लिया। उनका मानना था कि शिक्षा ग्रहण करने से हमें अपने अधिकारों का बोध होता है और उसे पाने के लिए हम एक सही रास्ता चुन पाते हैं। उनका मानना यह भी था कि अहिंसा के बल पर कोई भी लड़ाई जीती जा सकती है। पढ़ाई पूरी होने के बाद सन् 1954 ई. में वे पुनः रमा देवी चौधरी के साथ जुड़कर लोगों की सेवा करने लगीं। सन् 1955 ई. में उन्होंने गाँव में स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए तत्पर एक अमेरिकी प्रोजेक्ट में हिस्सा लिया और गाँवों की बेहतरी के लिए अपना योगदान दिया। वे गाँव-गाँव जाकर लोगों को उत्तम स्वास्थ्य हासिल करने के तरीके बतातीं और उन्हें स्वच्छता के प्रति जागरूक करतीं। उन्होंने नृसिंहनाथ में महिलाओं एवं अनाथ बच्चों की मदद के लिए ‘कस्तूरबा गांधी मातृ निकेतन’ नाम से आश्रम शुरू किया और सम्बलपुर जिले में डॉ. संतरा बाल निकेतन की नींव रखी। वे उन अनेक अनाथ बच्चों की माँ बन गईं जिन्हें या तो उनके माता-पिता ने त्याग दिया था या फिर जिनके माता-पिता नहीं थे। उन्होंने जेलों की ख़राब हालत के लिए भी अनेक कदम उठाए और वहाँ की ख़राब स्वच्छता की ओर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया। आज़ादी के लिए अहम योगदान देने और भारतीय जनता के प्रति अपने अथाह प्रेम के कारण लोगों ने उन्हें ‘उड़ीसा की मदर टेरेसा’ कहना शुरू कर दिया। 18 अगस्त, 1995 ई. को एक लंबी बीमारी के बाद आज़ादी की यह लौ तो सदा के लिए बुझ गई, लेकिन कई लोगों को जीने की सही राह दिखा गई।

पार्वती गिरी उन चंद महिलाओं में से हैं जो अपने समय से बहुत आगे का सोच सकती थीं, जिन्हें सत्य और असत्य के बीच सत्य को चुनना ही नहीं, बल्कि उसके लिए खुद को न्योछावर करना भी आता था। महात्मा गांधी के मार्ग पर चलने वाली पार्वती बार-बार कठिनाई आने के बाद भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुईं और आज़ादी के लक्ष्य को प्राप्त करने के बाद भारत को और श्रेष्ठ बनाने में अपना योगदान अंतिम साँस तक देती रहीं।

पार्वती गिरी के सम्मान में 2016 में उड़ीसा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक ने 7,600 करोड़ रुपये की मेगा लिफ्ट सिंचाई योजना का नाम ‘पार्वती गिरी मेगा लिफ्ट सिंचाई योजना’ कर दिया।

बिलाशी जंगल सत्याग्रह

लोकमान्य तिलक के बाद महात्मा गांधी कांग्रेस के सर्वमान्य नेता बने। महात्माजी द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ छेड़े गए युद्ध का स्वरूप भारत माता के सुपुत्रों ने पूर्णतः बदल दिया। सशस्त्र क्रांति के अलावा अन्य कई शांतिपूर्ण तरीकों से अन्यायी सरकार का विरोध किया जा सकता है, यह नई दृष्टि महात्माजी की थी। शस्त्रों से अंग्रेजों के खिलाफ लड़ना मुश्किल है, ऐसा उनका मानना था। स्वातंत्र्य युद्ध एक विशिष्ट वर्ग तक मर्यादित न रहे और यह संपूर्ण भारत के लोगों का, जनता का आंदोलन बने, ऐसी उनकी सोच थी। रहन-सहन से लेकर पहनावे तक एक सर्वसामान्य व्यक्ति की तरह खुद की पहचान बनाकर उन्होंने सर्वसामान्य जनता को आकर्षित किया। लोगों को यह लगता था कि यह हमारे बीच में से ही उभरा एक सामान्य व्यक्ति हमारा नेता है। महात्माजी की सत्यप्रिय और इस सामान्य छवि ने उन्हें लोगों के बीच लोकप्रिय बना दिया। महात्माजी ने अंग्रेजों के खिलाफ किए जाने वाले आंदोलन का चयन भी सर्वसामान्य जनता से जुड़े प्रश्नों से ही किया, जैसे कि नमक सत्याग्रह। नमक के बिना जीना इनसान के लिए नामुमकिन है। नमक की जीवन में जरूरत है और हर एक व्यक्ति हर रोज उसका इस्तमाल किए बिना रह नहीं सकता, यह जानकर अंग्रेजी हुकूमत ने नमक पर कर लगा दिया। समुंदर से मुफ्त मिलने वाले नमक पर कर देने से लोग परेशान हो गए। इस कारण से लोगों के बीच बढ़ते असंतोष को अंग्रेज सरकार के खिलाफ लड़ाई के स्वरूप में परिवर्तित करने के लिए महात्माजी की प्रेरणा से 'नमक सत्याग्रह' हुआ। नमक की तरह अंग्रेजी हुकूमत ने जंगलों से मिलने वाली अपार धनसंपदा को लूटने के लिए कुछ कानून बना दिए। अंग्रेज सरकार के इस फैसले से जंगल की साधन-संपत्ति पर जीने वाले लोगों का जीना मुश्किल हो गया। उन पीड़ित लोगों में सरकार के खिलाफ बड़ा असंतोष फैलने

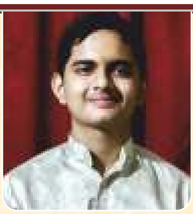

ध्रुव सचिन पटवर्धन

जन्म : सतारा, महाराष्ट्र

शिक्षा : 12 (वाणिज्य)

'मी सावरकर' वक्तृत्व स्पर्धा का महाविजेता होने के कारण सावरकर आत्मार्पण दिन के उपलक्ष्य में अंडमान सेल्युलर जेल में होने वाले वक्ता के रूप में शामिल हुए। आजादी के अमृत महोत्सव के निमित्त आयोजित प्रधानमंत्री युवा मेंटरशिप योजना में 75 लेखकों में से चयनित।

संपर्क : मोबाइल– 9021925347

ईमेल– dspkirtan@gmail.com

लगा। नमक के सत्याग्रह से प्रेरणा लेकर जंगलों में रहने वाले लोगों ने 'जंगल सत्याग्रह' का बिगुल बजा दिया।

जंगल के ऊपर निर्भर लोगों के असंतोष को सुनियोजित तरीके से सत्याग्रह का स्वरूप देने हेतु कांग्रेस ने निर्णय करके कार्यकर्ता शिविर का आयोजन किया। देशभर में जंगल समितियों की स्थापना की गई। महाराष्ट्र में भी विविध जिलों में जंगल सत्याग्रह समिति बनाई गई। सत्याग्रह का कार्यक्रम तय किया गया। महाराष्ट्र में संगमनेर, जंगल सत्याग्रह का प्रमुख केंद्र बना। संगमनेर,

चिरनेर, नंदुरबार, सिंदखेड आदि स्थानों में सत्याग्रह का प्रारंभ हुआ। 22 मई, 1930 को कांग्रेस ने जंगल सत्याग्रहों की अधिकृत घोषणा की। महाराष्ट्र के उस वक्त के सतारा जिले में स्थित शिराला तहसील में 'बिलाशी' नामक एक छोटे से स्थान ने बड़ा अपूर्व जंगल सत्याग्रह करके भारत के स्वातंत्र्य युद्ध के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों से लिख दिया है।

शिराला तहसील में बसा बिलाशी गाँव जंगलों से घिरा था। सागवान, शीशम और चंदन जैसे वृक्ष विपुलता से इस जंगल में थे। अंग्रेजों को बिलाशी के जंगल की अपार धनसंपत्ति लूटनी थी। अपने हेतु को साधने के लिए अंग्रेज सरकार ने जंगल को विविध श्रेणियों में आरक्षित कर दिया। इन कानूनों के अंतर्गत बिलाशी के लोगों का जंगल में प्रवेश ही बंद कर दिया गया। जानवरों के लिए घास काटने के लिए भी सरकार को मूल्य देना अनिवार्य हो गया। मूल्य भी प्रतिदिन बढ़ाया जाने लगा। जंगल में रहने वाले लोगों का स्वाभाविक अधिकार छीन लिया गया। बिलाशी के सारे लोग किसान थे। जंगल की कृपा से ही उनका जीवन चलता था। गाय, भैसों को जंगल में चराने के लिए ले जाकर उनसे मिलने वाले दूध को बेचना उनका प्रमुख व्यवसाय था। जंगल से लकड़ी काटकर बाजारों में बेचकर जीवन जीने वाले भी लोग थे। कुछ लोग जंगलों से मिलने वाले फल और फूलों को भी बेचते थे। अंग्रेजों के अन्यायी कानून और बरताव के कारण लोगों की आमदनी का मार्ग बंद हो गया। उनको भोजन मिलना भी मुश्किल हो गया। इस अन्याय का विरोध करने के लिए उनके मन में अंग्रेजों के खिलाफ बड़ा असंतोष उभरने लगा। जंगलों के पास, निसर्ग के साथ रहने वाले ये लोग मूलतः स्वतंत्र प्रवृत्ति के थे।

जंगल सत्याग्रह को व्यापक आंदोलन का स्वरूप देकर अंग्रेजी हुकूमत को हिलाने की योजना कांग्रेस ने बनाई थी। कांग्रेस के कार्यकर्ता शिविर से प्रशिक्षित स्वयंसेवक विविध जंगल सत्याग्रह के स्थानों पर स्थानिक जनता के मार्गदर्शन एवं कार्यक्रम के लिए पहुँचने लगे। बिलाशी में भी ऐसे कुछ कार्यकर्ता आकर जनता को जंगल सत्याग्रह के बारे में जानकारी देने लगे। उनमें से श्री दत्तोपंत कुलकर्णी और लक्ष्मणराव हसबनीस प्रमुख कार्यकर्ता थे। बिलाशी के लोगों को एकत्रित करके जंगल सत्याग्रह की योजना तैयार की गई। जंगल में जाकर बिना मूल्य दिए घास काटकर कानून भंग करना सत्याग्रह का प्रमुख कार्यक्रम था। बिलाशी के लोग सत्याग्रह में पूर्णरूप से सहभागी हो रहे थे। महिलाएँ और बच्चे भी सत्याग्रह में बड़े ही उत्साह से शामिल हो रहे थे। लोगों को जागृत करने के लिए प्रभात फेरियाँ निकाली जा रही थीं। प्रभात फेरियों में गीत गाए जाते थे।

सिर्फ घास काटकर विरोध जताकर सरकारी मेहमान बनकर कारावास में जाना बिलाशी के लोगों को उचित नहीं लगा। कांग्रेस के उपस्थित मार्गदर्शकों से बातचीत करके और भी कोई बड़ा आंदोलन खड़ा करने के लिए बिलाशी के स्थानीय लोगों ने सोचा। बिलाशी की ग्रामदेवता कुसाई देवी के मंदिर के पीछे बहुत बड़ा सागवान का जंगल था। उस जंगल में प्रवेश करके आंदोलन करने का फैसला सब लोगों ने एकमत से किया। इस शुभ कार्य का प्रारंभ 18 जुलाई, 1930 को होना निश्चित हुआ। बिलाशी के भैरवनाथ मंदिर में सत्याग्रह की योजना तैयार की गई। उस योजना के अनुसार सागवान के जंगल में प्रवेश करके सागवान की लकड़ी काटना प्रमुख कार्य था। काटी हुई लकड़ी में से एक ऊँचे लट्ठ पर तिरंगा फहराकर भगवान रामेश्वर महादेव के मंदिर के प्रांगण में स्थापित करने की योजना थी। भारत का तिरंगा फहराकर बिलाशी के लोगों का खुद को स्वतंत्र घोषित करने का प्रयास था। स्वतंत्र और अंग्रेजों के गुलामी से मुक्त जीवन जीने का निर्णय उन्होंने किया था।

18 जुलाई, 1930 को तय योजना के अनुसार दो हजार लोग कुसाई देवी के मंदिर के प्रांगण में उपस्थित हुए। बाबूराव दादा चरणकर 'चरण' से; कुलकर्णी मास्टर 'भीलवडी' से; लक्ष्मणराव हसबनीस 'शिराला' से; बापूसाहेब देशमुख 'रेठरे' से; बापूराव शेडगे 'शेडगेवाडी' से; दत्ता इनामदार 'सोनवडे' से; पांडु भोसले, गणपतराव गुदगे 'कुसाईवाडी' से; गणपतराव निकम, गजाननराव पेठकर, बाबू भाई मुलाणी, अनंत दांडेकर, सखाराम सोनार, धानु सोनार, धोंडो भटजी, दत्तात्रेय सोनार, दत्तात्रेय लोहार, बाबाजीभाई मुलाणी, गणपतराव पाटील, पांडुरंग सोनार 'बिलाशी' से आदि प्रमुख लोग सत्याग्रह में सबसे आगे थे। उन्होंने जंगल में प्रवेश करके सागवान का लगभग चालीस फीट ऊँचा लट्ठ काटा। उस लट्ठ को जुलूस

निकालकर ढोल-ताशे की आवाज में भगवान महादेवजी के मंदिर के प्रांगण में स्थापित करके उसके ऊपर तिरंगा फहराया गया। उस दिन से सभी बिलाशीवासी खुद को स्वतंत्र मानने लगे और वैसा ही व्यवहार भी करने लगे। वायुवेग से यह खबर चारों ओर फैल गई। अन्य गाँवों से लोग बिलाशी के लोगों का पराक्रम देखने के लिए आने

"बिलाशी के वीरों का पराक्रम सुनकर उनको पूरी तरह से नेस्तनाबूत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सशस्त्र सेना से हमला करने की योजना बनाई। महादेवजी के मंदिर में संत एकनाथीजी द्वारा रचित मराठी ग्रंथ 'एकनाथी भागवत' का पारायण चल रहा था। वो पारायण का पाँचवाँ दिन था। सभी बिलाशीवासी भजन में तल्लीन थे। इतने में ब्रिटिश फौज और पुलिस वहाँ पर दाखिल हुई। पुलिस के आते ही नगाड़ा बजाकर लोगों को इकट्ठा होने का संदेश दिया गया। लोग झंडे के पास उसका रक्षण करने के लिए इकट्ठा होने लगे। ब्रिटिश अधिकारियों को लोगों का प्रतिरोध देखकर गुस्सा आया और निहत्थे लोगों पर ब्रिटिश सेना के 600 जवानों ने जोरदार आक्रमण किया। लाठियाँ चलने लगीं। बच्चे, बूढ़े, औरतें किसी को भी नहीं छोड़ा गया। उन्हें मारा जा रहा था, जूतों के नीचे रौंदा जा रहा था।"

लगे। 'भारत माता की जय' के नारे चहुँओर गूँजने लगे। दिन-रात एक-एक करके चौबीसों घंटे लोग ध्वज के आस-पास इकट्ठा होकर ध्वज का रक्षण करने लगे। छोटे बच्चे भी छोटे-छोटे ध्वज हाथों में लेकर गाँव में घूमने लगे। ध्वज के पास बैठे कार्यकर्ताओं को खाना-पानी लाकर देने लगे। गाँव के पाटिल ने फितूरी करके सारी खबरें अंग्रेजों तक पहुँचाई। ये खबरें ब्रिटिश सरकार को मिलते ही शिराला तहसील का ब्रिटिश रेंजर कुछ सैनिकों को लेकर वहाँ पहुँचा। उसे देखकर सभी लोग ध्वज के आस-पास इकट्ठा हो गए। रेंजर ने लोगों को सागवान का लट्ठ वापस करने को कहा और कोई कार्रवाई न करने का भरोसा भी दिया। लोगों ने उसकी एक न सुनी। अंत में वो चिढ़कर वहाँ से लौट गया। यह देखकर सभी खुश हुए। सभी लोग उस झंडे के पास खुशियाँ मनाने लगे। अंग्रेजों ने झंडे को हटाने के बहुत प्रयास किए, लेकिन उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा। सत्याग्रह खत्म करने के लिए आने वाले ब्रिटिश अधिकारी और सैनिकों की लोगों ने एक न चलने दी। गाँववालों ने अंग्रेजों को खदेड़ दिया। उसी दौरान रंगनाथ दांडेकर को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, लेकिन लोगों ने पुलिस चौकी पर धावा बोल के उनको छुड़ा लिया। 18 जुलाई, 1930 से 05 सितंबर, 1930 तक 50 दिन यह संघर्ष चलता रहा। जंगल में जाकर घास काटने का सत्याग्रह भी इन्हीं दिनों चलता रहा।

बिलाशी के वीरों का पराक्रम सुनकर उनको पूरी तरह से नेस्तनाबूत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सशस्त्र सेना से हमला करने की योजना बनाई। महादेवजी के मंदिर में संत एकनाथीजी द्वारा रचित मराठी ग्रंथ 'एकनाथी भागवत' का पारायण चल रहा था। वो पारायण का पाँचवाँ दिन था। सभी बिलाशीवासी भजन में तल्लीन थे। इतने में ब्रिटिश फौज और पुलिस वहाँ पर दाखिल हुई। पुलिस के आते ही नगाड़ा बजाकर लोगों को इकट्ठा होने का संदेश दिया गया। लोग झंडे के पास उसका रक्षण करने के लिए इकट्ठा होने लगे। ब्रिटिश अधिकारियों को लोगों का प्रतिरोध देखकर गुस्सा आया और निहत्थे लोगों पर ब्रिटिश सेना के 600 जवानों ने जोरदार आक्रमण किया। लाठियाँ चलने लगीं। बच्चे, बूढ़े, औरतें किसी को भी नहीं छोड़ा गया। उन्हें मारा जा रहा था, जूतों के नीचे रौंदा जा रहा था। मुक्ताबाई साठे, मैनाबाई धनगर, धोंडुबाई म्हसकर, राजुबाई कदम आदि महिलाओं ने संग्राम में अंग्रेजों के दात खट्टे कर दिए। ब्रिटिश सिपाही घरों में घुसकर लोगों को बाहर निकालकर निर्ममता से मार रहे थे। अंत में अन्यायकारियों की जीत हुई, लेकिन अंग्रेजों के हाथ केवल सागवान का लट्ठ ही आया। उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। वापस जाते हुए ब्रिटिश सेना के रास्ते में जानवर चराने गए युवकों ने पहाड़ों से पत्थर फेंककर उनका रस्ता रोकने की कोशिश की। अंग्रेजों द्वारा पकड़े गए नेताओं और लोगों को छुड़ाना उन युवकों का उद्देश्य था। यह देखकर क्रोधित निर्दयी ब्रिटिश अधिकारियों ने उन युवकों पर गोलियाँ दागनी शुरू कर दीं। इस गोलीबारी में मांगरुल गाँव के शंकर भाऊ चांभार और धोंडू संतू कुम्हार 10-12 साल के दो छोटे बच्चों की गोलियाँ लगीं और उनकी मृत्यु हो गई। कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया।

इस तरह से अमानुष व्यवहार करके अंग्रेजों ने 50 दिन चलने वाले सत्याग्रह को निर्ममतापूर्वक समाप्त कर दिया। अंग्रेजों के बर्बरतापूर्ण व्यवहार से आस-पास के लोगों में डर का माहौल फैल गया। डर की वजह से बिलाशी की लोगों की मदद करने के लिए लोग आगे आने से डरने लगे। लोकमान्य तिलक के अनुयायी प्रसिद्ध वकील दादासाहेब करंदीकर बिलाशी की घटना पता लगते ही लोगों को कानूनी मदद देने के लिए शिराला पहुँचे। जख्मी लोगों का उपचार करने के लिए सतारा के डॉ. कोल्हटकर के नेतृत्व में डॉक्टरों का दल बिलाशी पहुँचा। यशवंतराव चव्हाण और रघुअण्णा लिमये आदि कांग्रेस के नेताओं ने बिलाशी में आकर लोगों के आँसू पोंछने का काम किया।

बिलाशी के संपूर्ण संग्राम में वहाँ के लोगों ने अपार साहस का परिचय दिया था। अंग्रेजों के खिलाफ हुआ यह आंदोलन यहाँ जन-आंदोलन बन चुका था। महात्माजी के विचारों से प्रभावित होकर पूरी तरह से यह आंदोलन शांतिपूर्ण तरीकों से और अहिंसक मार्ग से लड़ा गया था। जंगलों के किनारे रहने वाले लोगों के पास वन्यजीवों से लड़ने के लिए हथियार तो होते ही हैं, लेकिन किसी ने भी हथियार का इस्तेमाल नहीं किया।

निलहे किसानों के लिए महेश्वर प्रसाद ने छोड़ा संपादकत्व

भारत की आज़ादी की लड़ाई में जितनी भूमिका क्रांतिकारियों, सत्याग्रहियों और आंदोलनकारियों की रही, उतनी ही बड़ी भूमिका पत्रकारों की भी रही। कानपुर से प्रकाशित होने वाले अखबार 'प्रताप' और इलाहाबाद में छपने वाले पत्र 'स्वराज' का नाम इसके उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है। महान पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी के संपादकत्व में छपने वाले 'प्रताप' अखबार ने कई बार अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए जा रहे अत्याचारों की खबरें खुलकर छापीं। इसके एवज में उन्हें कई बार अंग्रेजों की अदालत में पेश होना पड़ा। 'स्वराज' अखबार के कई संपादकों को सजा-ए-कालापानी भुगतना पड़ा। बंगाल में 1858 में जो नील विप्लव हुआ, उसमें वहाँ के पत्रकार हरीशचंद्र मुखर्जी की बड़ी भूमिका मानी जाती रही है। देश के पहले सत्याग्रह कहे जाने वाले चंपारण सत्याग्रह में वहाँ के पत्रकार पीर मुहम्मद मूनिस की भूमिका किसे नहीं मालूम। मगर इन सबके बीच एक कहानी अल्पज्ञात ही रह जाती है। वह कहानी है उस संपादक की, जिसे चंपारण के किसानों के दुख-दर्द की खबरें छापने पर नौकरी से हटा दिया गया था।

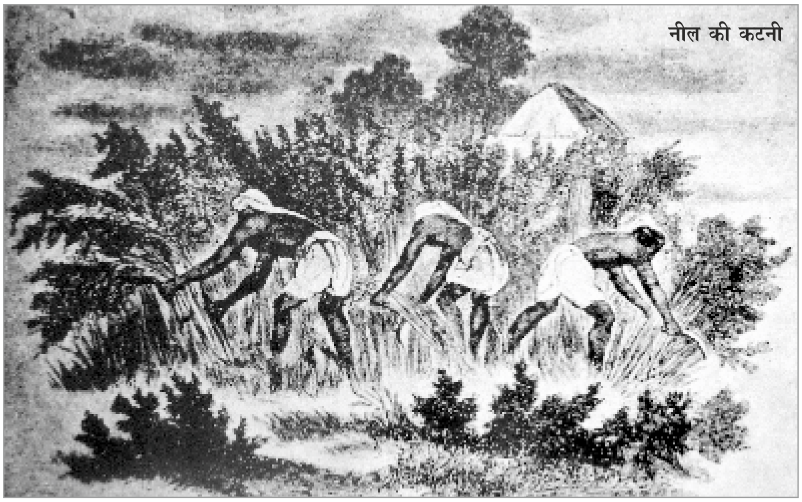

नील की कटनी

यह कहानी 1912-13 की है। कहानी 'बिहारी' अखबार की है, जिसके संपादक महेश्वर प्रसाद थे। यह उन दिनों की बात है जब बिहार नया-नया राज्य बना था। 1912 में उसे बंगाल से अलग किया गया था। उससे पहले बिहार, बंगाल, ओड़िशा और असम एक ही राज्य थे। मगर 1912 में बिहार और ओड़िशा के इलाके अलग हो गए और 'बिहार' और 'ओड़िशा' के नाम से अलग प्रोविंस बनाया गया। इस नए राज्य की राजधानी बनी पटना। पुरी और राँची में भी इसकी अंशकालिक राजधानियाँ थीं। उस वक्त बिहार के मशहूर वकील और पार्लियामेंटेरियन सच्चिदानंद सिन्हा की नए राज्य के निर्माण में बड़ी भूमिका मानी जा रही थी। उन्होंने नया राज्य बनने पर राजधानी पटना से एक अंग्रेजी अखबार की शुरुआत की, जिसका नाम 'बिहारी' रखा गया। उन्होंने उस वक्त के जनपक्षधर पत्रकारिता के समर्थक बाबू महेश्वर प्रसाद को अखबार का संपादक बनाया।

गोरख बाबू के नाम से मशहूर वकील को मोतिहारी में 'बिहारी' अखबार का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। उन दिनों राजकुमार शुक्ल रैयतों के मुकदमों की पैरवी के लिए मोतिहारी आया-जाया करते थे और वहाँ के वकीलों से उनकी अच्छी जान-पहचान थी। उन्होंने गोरख बाबू से कहा कि चंपारण के किसानों की व्यथा की खबरें भी अपने अखबार में भेजें। गोरख बाबू ने राजकुमार शुक्ल से बातचीत की खबरें भेजनी शुरू कीं तो ये खबरें संपादक महेश्वर

पुष्यमित्र

संप्रति : लेखक, पत्रकार। 17 वर्षों से विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में कार्यानुभव। वर्तमान में इंडिया टुडे (हिंदी) में कार्यरत। बिहार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मसलों में अभिरुचि।

प्रकाशन : रेडियो कोसी, सुन्नैर नैका, चंपारण 1917, कोसी के वटवृक्ष।

संपर्क : मोबाइल– 9771927097

ईमेल– pushymitr@gmail.com

प्रसाद को पसंद आई। उन्होंने चंपारण के किसानों की व्यथा को अखबार में प्रमुखता से प्रकाशित किया और गोरख बाबू को इस मुद्दे पर लगातार लिखने के लिए कहा गया। महेश्वर प्रसाद खुद भी कई दफा चंपारण गए और वहाँ की खबरें, संपादकीय और दूसरे सवालों को प्रमुखता से प्रकाशित करना शुरू किया।

“‘बिहारी’ राज्य का प्रमुख अखबार था। इसे तब सभी प्रभावशाली लोग पढ़ते थे। इन खबरों के प्रकाशन से ब्रिटिश सरकार के स्थानीय अधिकारी भी चिंतित थे। नील प्लांटर इन खबरों का खंडन बिहार प्लांटर्स एसोसिएशन की पत्रिका में प्रकाशित करते, मगर इससे कुछ खास फर्क नहीं पड़ता क्योंकि एक तो उस पत्रिका का प्रसार कम था, आम लोगों तक उसकी पहुँच नहीं थी। दूसरी बात यह कि इस पत्रिका में छपी खबरों को प्लांटरों के पक्ष के रूप में देखा जाता, उसे निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता था।”

सितंबर 1912 से जुलाई 1913 के बीच अंग्रेजी अखबार ‘बिहारी’ में चंपारण के नील किसानों की व्यथा से संबंधित 16 विस्फोटक रिपोर्टें प्रकाशित हुईं। ये खबरें 1912 में क्रमशः 11, 12, 13, 15 और 28 सितंबर को तथा 01, 25, 26, 27 अक्तूबर को, 02 दिसंबर को और 1913 में 11 जनवरी, 04, 22, 23 फरवरी, 02 अप्रैल और 06 जुलाई को छपीं। इन खबरों से खलबली मच गई। नई सरकार थी, नया प्रशासनिक अमला था। अब तक चंपारण की खबरें यदा-कदा ही अखबारों में आती थीं। अब खबरें लगातार शृंखला में छप रही थीं।

नील के किसानों का घर

इस घटना के बारे में बिहार राज्य अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित दस्तावेजों की पुस्तक ‘सेलेक्टेड डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधी’ज मूवमेंट इन चंपारण’ में पुस्तक के संपादक बी.बी. मिश्रा ने कुछ इस तरह लिखा है—

“सन् 1912 के आखिर में महेश्वर प्रसाद द्वारा संपादित अखबार ‘बिहारी’ में आलेखों की एक शृंखला छपी। ये आलेख चंपारण के नील खेती से संबंधित थे। इसमें किसानों के शोषण के बारे में विस्तार से लिखा गया था और माँग की गई थी कि गोरले की रिपोर्ट सार्वजनिक की जाए। (गोरले जो एक ब्रिटिश अधिकारी थे, ने 1908 में चंपारण में हुए किसान विद्रोह के बाद उस मामले की जाँच की थी और पाया था कि इन बगावतों में नील किसानों के शोषण और अनैतिक व्यवहार की बड़ी भूमिका रही है) महेश्वर प्रसाद ने अपने आलेखों में 1908 की बगावत के कैदियों को रिहा करने की भी माँग की थी। 01 दिसंबर, 1912 को महेश्वर प्रसाद उस वक्त के चंपारण के कलेक्टर से भी मिले थे और रैयतों की शिकायतों के बारे में जाँच करने की इच्छा जाहिर की थी। हालाँकि उन्हें जाँच करने की इजाजत तो मिल गई। मगर कुछ दिन बाद उन्हें नौकरी से हटा दिया गया। इस घटना के बाद लोगों में यह धारणा फैल गई कि चंपारण के किसानों की खबरें लिखने की वजह से उनकी नौकरी छूट गई।” बी.बी. मिश्रा ने यह सूचना एक अंग्रेज अधिकारी ई.वी. लेविंग के नोट्स के आधार पर दी थी। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भी अपनी किताब ‘महात्मा गांधी इन चंपारण’ में इस घटना का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है कि सन् 1912-13 में उस वक्त के बिहार के मुख्य अखबार ‘बिहारी’ ने चंपारण संबंधी मामले को लेकर कई आलेख लिखे, जिसमें रैयतों के कष्ट की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट कराया गया।

जाहिर-सी बात है, इन खबरों के लगातार शृंखलाबद्ध तरीके से छपने से चंपारण के नील किसान परेशान हो गए थे। ‘बिहारी’ राज्य का प्रमुख अखबार था। इसे तब सभी प्रभावशाली लोग पढ़ते थे। इन खबरों के प्रकाशन से ब्रिटिश सरकार के स्थानीय अधिकारी भी चिंतित थे। नील प्लांटर इन खबरों का खंडन बिहार प्लांटर्स एसोसिएशन की पत्रिका में प्रकाशित करते, मगर इससे कुछ खास फर्क नहीं पड़ता क्योंकि एक तो उस पत्रिका का प्रसार कम था, आम लोगों तक उसकी पहुँच नहीं थी। दूसरी बात यह कि इस पत्रिका में छपी खबरों को प्लांटरों के पक्ष के रूप में देखा जाता, उसे निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता था।

इसी बीच हुई एक घटना ने नील किसानों का मनोबल बढ़ा दिया। नवंबर 1912 में किसानों ने सोनपुर में एक बैठक आयोजित की थी। इस मौके पर पटना हाई कोर्ट का उद्घाटन करने पहुँचे

लॉर्ड हार्डिंग भी आमंत्रित थे। हार्डिंग साहब ने उस बैठक में अपने संबोधन में कह दिया कि हाल के वर्षों में नील किसानों और रैयतों के बीच संबंध बेहतर हुए हैं। किसान बैठक में उनका जाना और इस तरह का बयान देना एक तरह से प्लांटरों को क्लीन चिट देना था। अपने एसोसिएशन की पत्रिका में उन्होंने न सिर्फ इस बयान को प्रमुखता से प्रकाशित किया, बल्कि 'बिहारी' अखबार और उसके संपादक महेश्वर प्रसाद की खूब लानत-मलानत की। बयान को कोट करते हुए प्लांटरों की पत्रिका ने लिखा–

"लाट साहब का बयान जो उन्होंने नील किसानों, जमींदार और रैयतों के संतोषजनक संबंध के बारे में दिया है, अत्यंत समयानुकूल है। हम आशा करते हैं कि 'बिहारी' के संपादक और नीलवर रैयत लेखों के पंडित लेखक इस सरकारी बयान को भली-भाँति समझने की कोशिश करेंगे। इस बयान से 'बिहारी' अखबार की सारी बातें झूठ साबित हो जाती हैं। यह साबित हो जाता है कि 'बिहारी' अखबार नील किसानों के शोषण के बारे में झूठा शोरगुल कर रहा था। सरकार ने उसकी तमाम बातों को झूठा करार दिया। अब उसके लिए उचित है कि वह ऐसे लेख फिर से न लिखे, नहीं तो हम समझेंगे कि वह वैमनस्य फैलाने के लिए ही ऐसा किया करता था।"

हालाँकि 'बिहारी' अखबार और इसके संपादक ने इस चेतावनी को गंभीरता से नहीं लिया। खबरों का तीखापन और तेज हो गया। इस घटना के बाद भी अखबार में इस मसले पर सात आलेखों का प्रकाशन किया। प्रबंधन भी संपादक के साथ मजबूती से खड़ा था। इस बीच बार-बार सवाल उठता था कि सरकार चंपारण के किसानों की शिकायतों पर जाँच आयोग का गठन करे। सरकार आनाकानी कर रही थी। ऐसे में महेश्वर प्रसाद ने इसे अपनी पत्रकारीय जिम्मेदारी समझते हुए रैयतों के बीच जाकर खुद मामले की जाँच की और इसे अपने अख़बार में प्रमुखता से प्रकाशित किया। इस खबर ने पहले से भड़के प्रशासन को और उत्तेजित कर दिया। महेश्वर प्रसाद को संपादक पद से हटाने की मुहिम शुरू हो गई।

इस मामले में बिहार और ओड़िशा राज्य के पहले लेफ्टिनेंट गवर्नर सर चार्ल्स बेली प्लांटरों के मददगार साबित हुए। उन्होंने बनैली राज के मैनेजर शिवशंकर प्रसाद को बुलवा कर महेश्वर प्रसाद को संपादक पद से हटाने का आदेश जारी कर दिया। दरअसल 'बिहारी' अखबार में बनैली राज के मालिक राजा कृत्यानंद सिंह की दो लाख की पूँजी लगी हुई थी और वे इस कंपनी के सबसे बड़े शेयर होल्डर थे, यह बात बेली साहब को मालूम थी और उन्हें यह भी मालूम था कि बनैली राज सबसे कमजोर कड़ी है। कोई भी जमींदार राज्य के लेफ्टिनेंट गवर्नर के कहे से बाहर नहीं जा सकता, उनसे सीधी टक्कर नहीं ले सकता। बेबस होकर महेश्वर प्रसाद को हटाना पड़ा। उनका मान रखने के लिए उन्हें बनैली रियासत में भी कोई सम्मानित पद दे दिया गया।

यह संभवतः भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अकेली ऐसी घटना होगी, जिसमें सरकार विरोधी खबर लिखने की वजह से सरकार ने अखबार के मालिकों को खुला आदेश दिया हो और मालिकों को संपादक को पद से हटाना पड़ा हो। 'बंगाल' के हरीशचंद्र मुखोपाध्याय और 'प्रताप' के संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी को भी

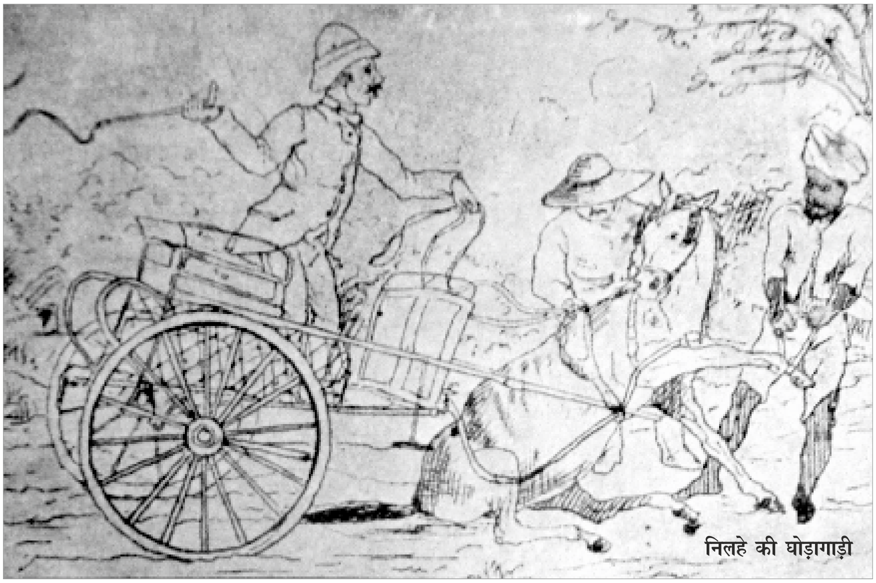

निलहे की घोड़ागाड़ी

ब्रिटिश सरकार ने कई तरह से प्रताड़ित किया, मगर वे अखबार को संपादक बदलने या सरकार विरोधी खबर लिखने के लिए मजबूर नहीं कर पाए। अंग्रेज सरकार के कोप की वजह से संपादक की कुरसी गँवाने वाले महेश्वर प्रसाद का नाम आज किसी को याद नहीं है। न राज्य के पत्रकारों को और न ही आज़ाद भारत की सरकार को। मगर उन्होंने महज 10 महीने की पत्रकारिता में वह मिसाल कायम की जो अद्वितीय है।

महेश्वर प्रसाद को हटाने के बाद 'बिहारी' अखबार की धार कुंद होती चली गई। तब चंपारण के किसानों का दुख दर्द बयाँ करने का बीड़ा कानपुर से प्रकाशित होने वाले विप्लवी अखबार 'प्रताप' ने उठा लिया। 1915-16 से 1918 तक चंपारण के पत्रकार पीर मुहम्मद मूनिस ने 'प्रताप' अखबार में कई खबरें लिखीं। इन तमाम खबरों में चंपारण के किसानों का दुख-दर्द शामिल हुआ करता था।

स्वतंत्रता सेनानी स्वामी कृष्णानंद जी

जनवरी 1857 को जिस समय सेना में एनफील्ड राइफल का चलन शुरू हुआ (जिसमें गाय व सूअर की चर्बी वाले कारतूस का) जिसको लेकर 28 मार्च, 1857 को बैरकपुर के एक सैनिक, मंगल पांडेय ने कारतूसों के प्रयोग पर आपत्ति जताई तो उसे फाँसी की सजा सुना दी गई और इसी से देशभर में विद्रोह की चिनगारी भड़क उठी। इसके साथ-ही-साथ पहाड़ी क्षेत्र की छोटी-छोटी रियासतों के राजाओं, सैनिकों व आम जनता द्वारा भी अंग्रेजी साम्राज्य का खुलकर विरोध किया गया तथा सब ने स्वाधीनता संग्राम की इस लड़ाई में बढ़-चढ़कर भाग लिया। इस घटना के बाद, अंग्रेजों को यहाँ के लोगों की देशभक्ति का आभास हो गया। फलतः उनका व्यवहार भारतीयों के प्रति कठोर हो गया। क्रांतिकारियों पर भी कई तरह के प्रतिबंध लगा दिए गए। इन क्रांतिकारी गतिविधियों से हिमाचल की पहाड़ी रियासतें भी अछूती नहीं रहीं। इन रियासतों के क्रांतिकारियों के आपसी तालमेल से ही क्रांति की गतिविधियों में दिन-प्रतिदिन तेजी भी आनी शुरू हो गई और आपसी संबंधों के साथ गुप्त संदेशों का आदान-प्रदान, घातक बमों का निर्माण, सरकारी खजानों की लूटपाट के तौर-तरीके भी एक से दूसरे स्थान के क्रांतिकारियों तक आसानी से पहुँचने लगे थे। मंडी के क्रांतिकारियों की सूची में स्वामी कृष्णानंद, भाई हिरदा राम, रानी खैर गढ़ी, पंडित गौरी प्रसाद, किशन चंद फतुरिया, तेज सिंह निधड़क व स्वामी पूर्णानंद आदि नामों के साथ सैकड़ों नाम गिनाए जा सकते हैं।

स्वामी कृष्णानंद का जन्म मंडी शहर की खनक गली में स्थित श्री चुहरु राम के घर 06 मार्च, 1891 में हुआ था। इस होनहार बालक के बचपन का नाम 'हरदेव' था। हरदेव ने दसवीं की परीक्षा होशियारपुर की पाठशाला से अच्छे अंकों पास करने के बाद, शीघ्र ही दयानंद एंग्लो महाविद्यालय, लाहौर में दाखिला ले लिया, लेकिन एफ.ए. करने के पश्चात उसने कॉलेज छोड़ दिया और फिर काँगड़ा की डी.ए.वी. पाठशाला में अध्यापन

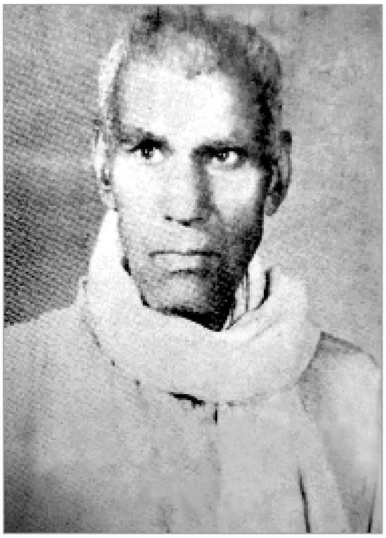

करने लगे, लेकिन पुनर्जागरण के प्रभाव व अध्यात्म से जुड़ने के कारण (स्वामी दयानंद जी के सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से) वह देशहित के लिए क्रांतिकारी कार्यों के बारे में चिंतन करने लगा। बेटे की बढ़ती खामोशी को देखते हुए, माँ-बाप ने शीघ्र ही हरदेव की शादी भी करवा दी ताकि उसका मन लग जाए। इसी मध्य हरदेव के स्वामी सत्यदेव व निहाल सिंह के संपर्क में आने से पता चला कि अमेरिका में तो व्यक्ति अपनी पढ़ाई का सारा खर्च खुद ही काम करके निकाल सकता है और फिर हरदेव अमेरिका जाने का विचार करने लगा तथा जाने के लिए उसने कुछ पैसे भी इकट्ठे कर लिए। जून 1913 में 20 साल की उम्र में एक दिन अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर पढ़ाई करने व पैसा कमाने के लिए हरदेव अमेरिका जाने वाले जहाज में बैठ गया। उसी जहाज में मंडी

डॉ. कमल के. 'प्यासा'

संप्रति : पूर्व प्रधानाचार्य एवं पूर्व संपादक, मंडी मनरेगा पत्रिका व काउंसलर, इग्नू।

शिक्षा : एम.फिल., पी-एच.डी. व ए.डब्ल्यू.सी. (जीव-जंतु कल्याण)।

प्रकाशन : कहानी, कविता व कला संस्कृति विषयों पर चार पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा श्रेष्ठ अध्यापक, प्रदेश सरकार व भाषा संस्कृति विभाग द्वारा लेखन, राज्य विज्ञान तकनीकी व पर्यावरण परिषद द्वारा विज्ञान की विभिन्न उपलब्धियों के लिए सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9882176248

ईमेल– pyasa.kamalpruthi@gmail.com

के लाला कांशीराम व पंजाब का एक अन्य व्यक्ति भी द्वितीय श्रेणी में अमेरिका के लिए सफर कर रहे थे, जबकि हरदेव अपने एक अन्य साथी (हज़ारा सिंह) के साथ डैक पर थे। 01 सितंबर, 1913 को सैनफ्रांसिस्को पहुँचने पर द्वितीय श्रेणी के यात्री तो उतर गए, लेकिन इन दोनों डैक वालों को वहाँ नहीं उतरने दिया गया, चिकित्सक ने इन्हें अनफिट घोषित कर दिया। हरदेव को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि उनके सारे सपने बिखर गए थे और सारी भूख-प्यास भी मिट गई थी। वह आत्महत्या करने को सोचने लगे। जहाज अब हांगकांग की ओर बढ़ रहा था, होनोलूलू पहुँचने पर वह जहाज से समुद्र में कूदने ही जा रहे थे कि जहाज के कर्मचारियों ने देख लिया और उन्हें समुद्र में डूबने से बचा लिया। इसके पश्चात जहाज के जापान पहुँचने पर हरदेव योकाहामा में उतर गए, क्योंकि वहाँ अमेरिका की तरह सख्ती नहीं थी और फिर वह पढ़ाई व काम की तलाश में टोकियो, नागासाकी व कोबे जैसे शहरों में कई जगह घूमे, लेकिन वहाँ भी काम के साथ पढ़ाई (दोनों एक साथ) नहीं मिल सकी। इसके पश्चात हरदेव आगे बढ़ते-बढ़ते शंघाई, चीन पहुँच गए। शंघाई में पंजाब के सिख भारी संख्या में रहते थे, जो कि पुलिस, ब्रिटिश सेना व रेलवे में काम करते थे। हरदेव भी वहाँ एक गुरुद्वारे में ठहरकर रेलवे की नौकरी में लग गए। गुरुद्वारे में रहते उन्हें वहाँ गदर पार्टी से संबंधित साहित्य पढ़ने को मिलने लगा, जो कि अमेरिका से लाला हरदयाल द्वारा स्थापित गदर पार्टी से आता था।

इसी बीच एक दिन हरदेव की मुलाकात क्रांतिकरी नेता डॉ. मथुरा सिंह से हो गई और फिर दोनों एक किराये के कमरे में रहकर गदर पार्टी का प्रचार-प्रसार करने लगे। डॉ. मथुरा सिंह के साथ से हरदेव हर प्रकार की चिंता से मुक्त हो चुके थे तथा एक क्रांतिकारी के रूप में भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने की लड़ाई में पूरी तरह से जुट गए थे। फिर दोनों ने अंग्रेजों की सेना में विद्रोह व असंतोष फैलाने तथा सिख व डोगरा रेजिमेंट के साथ सेवानिवृत्त सैनिकों को अपने आंदोलन में शामिल करने की योजनाएँ भी बनाने लगे थे। इसके साथ ही शंघाई के बेरोजगार सिखों को ब्रिटिश काउंसिल से रोजगार के लिए या फिर वापस भारत भेजने की लिए जुलूस निकाला। इससे अंग्रेज इनके पीछे लग गए और मजबूर होकर इन्हें शंघाई छोड़ना पड़ा।

अप्रैल 1914 में हरदेव व मथुरा सिंह दोनों अपने साथियों सहित मद्रास पहुँच गए। बाद में जुलाई 1914 को हरदेव बंबई पहुँच कर वहाँ लिपिक की नौकरी करने लगे और कुछ समय पश्चात मंडी, अपने घर आ गए। जब अंग्रेजों को क्रांतिकारियों की गदर पार्टी की योजनाओं की जानकारी हुई तो पुलिस द्वारा कई स्थानों पर तलाशी अभियान शुरू कर दिया और फिर 07 मार्च, 1915 को मंडी में हरदेव के पास पुलिस पहुँच गई तथा उनके घर की तलाशी लेने लगी, लेकिन हरदेव ने तो बड़ी होशियारी से पहले ही गदर पार्टी का सारा साहित्य पड़ोस में छिपा दिया था। फलस्वरूप पुलिस को शर्मिंदगी का सामना करना पड़ा, लेकिन पुलिस ने अपनी आन के लिए भाई परमानंद को पकड़ लिया जो कि अमेरिका से आया था और उसे गदर पार्टी का मुख्य कर्ता-धर्ता बताया गया। उसके साथ डॉ. मथुरा सिंह व भाई हिरदा राम को भी पकड़ लिया गया, क्योंकि भाई मथुरा सिंह ने हरदेव को अपना एक गुप्त संदेश अर्थात '19 फरवरी विवाह का आमंत्रण' भेजा था। हरदेव को भी जानकारी मिल गई थी कि पुलिस उसके पीछे लगी है और कभी भी उनको गिरफ्तार कर सकती है। स्वामी जी भी जब कराची रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। उनके कई साथियों को पहले ही पकड़ा जा चुका था। कई को फाँसी की सजा भी सुनाई गई थी। भाई हिरदा राम को गिरफ्तार करके मौत की सजा सुनाई गई, जो कि बाद में उम्र कैद में बदल दी गई थी। हरदेव को भगोड़ा घोषित किया जा चुका था। अपने ऊपर आई मुसीबतों को देखकर हरदेव ने संन्यास का रास्ता अपनाने का मन बनाया और बद्रीनाथ के स्वामी भूमानंद जी के पास पहुँच गए। जहाँ स्वामी जी ने हरदेव का नामकरण हरदेव के स्थान पर कृष्णानंद कर दिया और फिर भगवा वस्त्र धारण करके स्वामी कृष्णानंद के रूप में

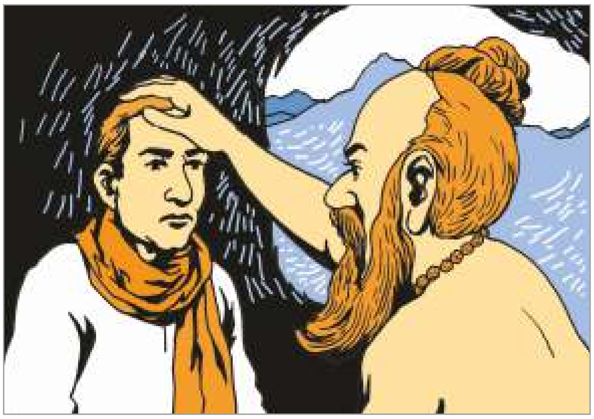

हरदेव पवित्र तीर्थ उत्तर काशी की ओर चल दिए। स्वामी कृष्णानंद जी हरिद्वार होते हुए अहमदाबाद पहुँच गए। एक दिन स्वामी जी ने उर्दू के समाचार पत्र 'प्रकाश' में पढ़ा कि सिंध के खीरपुरा नाथन साह के किसी परिवार के आर्य समाज में शामिल होने पर उन्हें बिरादरी से बाहर कर दिया है। खबर वास्तव में ही सबको हैरान करने वाली ही थी, जिसके लिए स्वामी जी सिंध के लोगों को जागृत करने के लिए सिंध पहुँच गए। सिंध में स्वामी जी के शिक्षात्मक भाषणों ने वहाँ के लोगों को मोह लिया। थारपारकर क्षेत्र के लोग तो स्वामी जी के इतने करीब हो गए कि वे स्वामी जी को अपने घर का सदस्य ही समझने लगे थे क्योंकि स्वामी जी ने भी तो उस सारे क्षेत्र को पैदल या ऊँट की सवारी से पहुँचकर, वहाँ पर पुनर्जागरण व निर्माण के कार्य करके राष्ट्र जनचेतना का संदेश दिया था। स्वामी जी ने वहाँ स्वामी दयानंद जी के दर्शन व शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार अक्तूबर 1915 से लेकर आगे चार-पाँच वर्ष तक जारी रखा।

12 मार्च, 1930 को जब महात्मा गांधी द्वारा नमक सत्याग्रह आंदोलन किया गया तो स्वामी जी, जिनके पास कराची सत्याग्रह आश्रम का कार्यभार था, ने भी शपथ लेकर सभी कार्यकर्ताओं के साथ 13 अप्रैल, 1930 को नैटीक जैटी से समुद्र से पानी लाकर सेठ नारायण दास आनंद, दूसरे नेताओं व कार्यकर्ताओं के साथ नमक

"स्वामी जी ने माता से कहा कि जब तक देश स्वतंत्र नहीं हो जाता तब तक मैं नहीं जा सकता और माता को जाते हुए यह भी कह दिया कि मेरी पूर्व जिंदगी का राज़ किसी से भी न बताया जाए, लेकिन इसके बाद शीघ्र ही में जब हंसराज व विष्णु शर्मा स्वामी जी से मिले तो राज़ छिपा न रह सका।"

तैयार किया, लेकिन अगले ही दिन आश्रम में छापा मारकर स्वामी जी के साथ ही कई लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया था। जब लोगों ने गिरफ्तारियों का विरोध किया तो पुलिस ने गोली चला दी, जिससे मेघराज लूला व दत्तराम कोयले मारे गए। स्वामी जी को डेढ़ वर्ष की सज़ा हुई, दूसरे नेताओं को भी सज़ा सुनाई गई। बाद में मार्च 1931 को गांधी-इरविन समझौते के अंतर्गत स्वामी जी के साथ सब को छोड़ दिया गया।

जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक सत्र कराची में सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें प्रबंधन कमेटी के सचिव स्वामी जी ही थे। इसी सत्र का फोटो जब हिंदी समाचार पत्रों में छपा और स्वामी जी की माता ने देखा तो उन्होंने अपने बेटे हरदेव को पहचान लिया और अपने दूसरे बेटे के साथ कराची पहुँच गईं तथा बेटे को मंडी चलने को कहने लगीं। स्वामी जी ने माता से कहा कि जब तक देश स्वतंत्र नहीं हो जाता तब तक मैं नहीं जा सकता और माता को जाते हुए यह भी कह दिया कि मेरी पूर्व जिंदगी का राज़ किसी से भी न बताया जाए, लेकिन इसके बाद शीघ्र ही जब हंसराज व विष्णु शर्मा स्वामी जी से मिले तो राज़ छिपा न रह सका। फिर क्या था स्वामी जी व शेष सभी साथियों को शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया। 1932 में ही दूसरी गोलमेज बैठक की असफलता के पश्चात जब कांग्रेस के कई नेताओं को गिरफ्तार किया गया तो उस समय भी स्वामी जी को ढाई साल की सज़ा सुनाई गई।

08 व 09 अगस्त, 1942 को बंबई में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में स्वामी जी को सिंध से सदस्य के रूप चयनित किया गया था। 09 अगस्त को जब 'भारत छोड़ो आंदोलन' देशभर में चला और अंग्रेजों को भारत से चले जाने को कहा गया तो ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर प्रतिबंध लगाकर महात्मा गांधी तथा कई अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया। इसी मध्य एक नौजवान हिम्मू कलानी को मिलिट्री ट्रेन की पटरी को उखाड़ने के अभियोग में पकड़ लिया था और फिर उसे फाँसी पर लटका दिया गया। इतना ही नहीं, कुछ एक लड़कियों को भी ब्रिटिश झंडे को फाड़ने के दोष में गोली से उड़ा दिया गया था। 1945 में जब जर्मनी व जापान हार गए तो धीरे-धीरे कैदियों को छोड़ा जाने लगा। स्वामी जी की रिहाई जून 1945 को हो गई। 1946 में जब देश में आम चुनाव हुए तो स्वामी जी को सिंध से असेंबली के लिए कांग्रेस की ओर से खड़ा किया गया तथा स्वामी जी थारपारकर से चुन लिए गए।

विभाजन के बाद सिंध में हिंदू और सिखों पर हमले शुरू हो गए, लूटपाट शुरू हो गई और कई हिंदू-सिख अपनी जानें गँवा बैठे। अंत में एक कमेटी का गठन इंडियन हाई कमिश्नर के सहयोग से किया गया ताकि हिंदू-सिखों को निकाला जा सके। फिर स्वामी नारायण मंदिर में, स्वामी जी की अगुवाई में एक शिविर लगवाया गया, जिसमें सिंध, बलूचिस्तान व बहावलपुर के हिंदुओं व सिखों को आश्रय दिया गया। इस प्रकार स्वामी जी स्वतंत्रता के बाद भी लगभग दो वर्ष तक सिंध-कराची में ही रहे व पूरी तरह से शिविर में सहयोग देते रहे।

सन् 1950 में स्वामी जी पाकिस्तान से बंबई आ गए, यहाँ आने पर सबसे पहले अपने पुराने साथियों, क्रांतिकारियों व शरणार्थियों से मिलने शिविर में पहुँचे। बाद में पूरे 35 वर्ष बाद दिल्ली होते हुए अपने घर, मंडी पहुँच गए, तब तक उनके पिता और पत्नी का स्वर्गवास हो गया था। सन् 1952 में स्वामी जी हिमाचल असेंबली में स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में जीतकर आए। 1957 में दूसरी बार टेरिटोरियल कौंसिल के लिए चुने गए। 1962 में किन्हीं कारणों से चुनाव नहीं जीत पाए, लेकिन फिर भी 1968 तक मंडी म्युनिसिपल कमेटी के प्रेजिडेंट बने रहे। चीन व पाकिस्तान की लड़ाई के समय स्वामी जी ने सभी दलों के सहयोग से राष्ट्रीय रक्षा समिति का गठन करके राष्ट्र सेवा को बरकरार रखा।

इतनी सारी क्रांतिकारी गतिविधियों व देशसेवा की खूबियों के साथ-साथ स्वामी जी ने मंडी में अर्बन कोऑपरेटिव बैंक, मंडी आर्य समाज व खत्री सभा मंडी आदि का गठन करके अपने निष्काम व निस्वार्थ व्यक्तित्व होने का परिचय दिया है और उन्हीं के प्रयासों के कारण आज समाज का हर वर्ग पूरा-पूरा लाभ उठा रहा है। नवंबर 1968 में जब स्वामी जी अपने मित्रों से मिलने बंबई पहुँचे तो सिंधी समाज ने उन्हें आँखों पर बिठा लिया था। सिंध के लोगों के लिए आज भी स्वामी जी एक जननायक हैं और जननायक रहेंगे। यह बात सत्य भी है कि एक दूर के व्यक्ति का तीन बार सिंध की असेंबली के लिए चुना जाना...!

सिंध के लोगों के लिए बहुत बड़ी मिसाल थी। स्वामी जी ने भी तो अपना सारा जीवन सिंधी बिरादरी के लिए समर्पित कर दिया था। तभी तो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी अगस्त 1921 के 'यंग इंडिया' समाचार पत्र के अंकों में बहुत कुछ स्वामी जी के संबंध लिखकर उनका वास्तविक रूप उजागर किया था। 16 सितंबर, 1974 को स्वामी जी लंबी बीमारी के कारण इस संसार को छोड़कर चले गए।

अमर क्रांतिकारी भागीरथ सिलावट

सन् 1857 में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी जान देने वाले दो लाख से अधिक लोगों की शहादत ने दुनिया के इतिहास में इसे एक अविस्मरणीय घटना बना दिया है। ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में अर्ल स्टेनले को जवाब देते हुए उस समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ (बाद में प्रसिद्ध प्रधानमंत्री) डिज़रैली ने 27 जुलाई, 1857 को स्पष्ट शब्दों में कहा था—"यह सिपाही विद्रोह नहीं है, यह राष्ट्रीय बगावत है। सारा हिंदुस्तान अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ है।"

भारत माता की अज्ञात और अनगिनत संतानें अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए कुर्बान हो गईं। किसी ने शायद यह नहीं सोचा कि मैं दलित हूँ या उच्च वर्ग से। उन्हें तो केवल मातृभूमि से प्रेम है, जिसकी रक्षा के लिए अंतिम श्वास तक लड़ते हैं। ऐसे ही अमर शहीद थे भागीरथ सिलावट जो 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में मातृभूमि के लिए कुर्बान हुए।

संध्या सिलावट

शिक्षा : एम.ए., नेट, पी-एच.डी.।

संप्रति : सहायक आयुक्त, राज्य कर, इंदौर।

प्रकाशन : कई राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में लेख, लघुकथा, कविता प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9425956771

ईमेल— sandhyasilawat1972@gmail.com

मध्य भारत में 1857 के स्वातंत्र्य समर के केंद्रबिंदु रहे इंदौर में हुए उत्कर्ष की कहानी के पहले उचित होगा कि इंदौर में ब्रिटिश सत्ता की मजबूत स्थिति के बारे में संक्षेप में जाना जाए।

महिदपुर के युद्ध के पश्चात् 1818 में मंदसौर की संधि के फलस्वरूप जब 'ईस्ट इंडिया कंपनी' का वर्चस्व पुराने सेंट्रल इंडिया अर्थात मध्य भारत में बढ़ गया तो उसने यहाँ के देशी राजाओं के साथ संधियाँ करके उन्हें कंपनी सरकार के अधीन कर लिया। उन राजाओं तथा उनके समस्त क्षेत्र को 'सेंट्रल इंडिया एजेंसी' नाम देकर, इसे 'ब्रिटिश रेसीडेंसी' के अधिकार में कर दिया। इसका प्रधान कार्यालय इंदौर में था। 1818 में होल्करों की राजधानी भी महेश्वर से इंदौर आ गई। 1820 से 1827 के बीच इंदौर रेसीडेंसी का भव्य भवन बनकर तैयार हुआ। जहाँ एक रेसिडेंट गवर्नर जनरल के 'एजेंट' के रूप में काम करता था। 1844 से 1860 तक रॉबर्ट हेमिल्टन इंदौर का चर्चित रेसीडेंट रहा। 1857 की क्रांति के समय हेमिल्टन छह माह की छुट्टी पर इंग्लैंड गया हुआ था। कार्यवाहक एजेंट टू गवर्नर जनरल (ए.जी.जी.) कर्नल हेनरी मेरियन ड्यूरेंड इंदौर रेसीडेंसी में विराजमान था। इंदौर स्थित ब्रिटिश रेसीडेंट की रक्षा तथा ब्रिटिश सत्ता की रक्षा के लिए महू में सैनिक छावनी की स्थापना भी की गई थी।

सन् 1857 में सेंट्रल इंडियन एजेंसी के अधीन छह राज्य थे। इंदौर, ग्वालियर, धार और देवास, मराठा राजाओं का राज्य था जो पेशवा के अधीन थे। भोपाल और जावरा मुस्लिम राज्य थे। रीवा, ओरछा, बड़वानी, जैसे कुछ प्रमुख राज्यों के अलावा यहाँ बहुत-सी जागीरें थीं, जो इस एजेंसी का कार्यक्षेत्र थीं। उस समय इसका क्षेत्रफल करीब 86,000 वर्गमील तथा आबादी लगभग 80 लाख थी। इस समूचे क्षेत्र को नियंत्रित एवं अपने अधिकार में बनाए रखने की दृष्टि से अंग्रेजों ने जगह-जगह सैनिक

छावनियाँ बना रखी थीं। इन स्थानों के नाम हैं—महू, नीमच, मुरार, सीहोर, आगर, महिदपुर, गुना, शिवपुरी आदि।

महू तथा इंदौर के देशी सैनिक तो अप्रैल से ही क्रांति का शंख फूँककर इंदौर रेसीडेंसी तथा महू छावनी को ध्वंस करने पर तुले हुए थे। वे संदेशवाहकों के माध्यम से क्रांति के मुख्य संयोजकों से संपर्क

“01 जुलाई, 1857 को इंदौर में जो क्रांति हुई, इसका नेतृत्व अश्व सेना के अधिकारी सआदत खाँ तथा भागीरथ सिलावट ने किया। इंदौर और महू में क्रांति की एक सुनियोजित योजना सबसे पहले रेसीडेंसी स्कूल में बनी थी (अब वह स्कूल शासकीय संयोगिता गंज हायर सेंकेडरी स्कूल हो गया है)। भोपाल से आए नवाब वारिस मोहम्मद जो इंदौर के रेसीडेंसी बाजार में ही रहते थे, ने इसकी अलख जगाई। होलकर कैवेलरी के सआदत खाँ इसके सदस्य थे।”

बनाए हुए थे। इस बीच हुआ यह कि एक दिन महू के कर्नल प्लाट ने एक संदेशवाहक को पकड़ कर उसे इंदौर में कर्नल ड्यूरेंड को सुपुर्द कर दिया था। उसके बाद से ही अंग्रेज काफी सावधान होकर पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए बैठे थे। रेसीडेंट वगैरह बहुत सावधान थे और परिस्थिति को देखते हुए ड्यूरेंड दो सैन्य दल भोपाल से और 300 भील मालवा से बुलवा चुका था। अतः महू सैनिकों द्वारा विद्रोह की योजना अमल में नहीं लाई जा सकी।

03 जून, 1857 को रात में नौ बजे नीमच की देशी सेना ने विद्रोह का बिगुल फूँक दिया। 14 जून, 1857 को मुरार स्थित, ग्वालियर छावनी के सिपाहियों ने रात के नौ बजे विद्रोह का ध्वज लहरा दिया। उन्होंने ग्वालियर और शिवपुरी के बीच टेलीग्राफ लाइन काट दी और संचार की मुख्य लाइन बाम्बे-आगरा रोड को खतरे में डाल दिया। 20 जून को शिवपुरी के सैनिक भी विद्रोह कर गए। इसी तरह गुना की सैनिक टुकड़ी ने विद्रोह कर दिया। सभी जगहों से अंग्रेजों को अपनी प्राण रक्षा के लिए अन्यत्र जाकर शरण लेनी पड़ी।

30 जून, 1857 तक इंदौर में कुछ नहीं था। 01 जुलाई को योजनापूर्वक इंदौर में रेसीडेंसी पर हमला हुआ। यह हमला होल्कर सेना द्वारा किया गया, न कि महू के देशी सैनिकों द्वारा जिनसे ऐसी आशंका की जा रही थी कि वे इंदौर में विद्रोह करेंगे।

01 जुलाई, 1857 को इंदौर में जो क्रांति हुई, इसका नेतृत्व अश्व सेना के अधिकारी सआदत खाँ तथा भागीरथ सिलावट ने किया। इंदौर और महू में क्रांति की एक सुनियोजित योजना सबसे पहले रेसीडेंसी स्कूल में बनी थी (अब वह स्कूल शासकीय संयोगिता गंज हायर सेंकेडरी स्कूल हो गया है)। भोपाल से आए नवाब वारिस मोहम्मद जो इंदौर के रेसीडेंसी बाजार में ही रहते थे, ने इसकी अलख जगाई। होलकर कैवेलरी के सआदत खाँ इसके सदस्य थे। क्रांति की इस योजना में सआदत खाँ का सहयोग करने वालों में प्रमुख थे, अब्दुल समद, जो कि रेसीडेंसी स्कूल में फारसी के शिक्षक थे, एक सैनिक अधिकारी भागीरथ सिलावट, रेसीडेंसी स्थित होलकर सेना के बंसगोपाल कमांडेंट, उनके जमादार शेर खाँ तथा तोपची महमूद खाँ, नन्हे खाँ, महिदपुर टुकड़ी के रहमतुल्ला खाँ तथा सेना का एक अधिकारी दुर्गाप्रसाद। समकालीन स्रोतों तथा कुछ अन्य घटनाओं के बारीक विश्लेषण से इंदौर में विद्रोह के पूर्व नियोजन की न केवल पुष्टि होती है, बल्कि यह आभास भी होता है कि महाराजा तुकोजीराव होलकर तथा उनके कुछ मंत्रियों का आशीर्वाद भी क्रांतिकारियों को प्राप्त था।

01 जुलाई, 1857 को सआदत खाँ के नेतृत्व में इंदौर रेसीडेंसी परिसर में क्रांति की तोपें गड़गड़ा उठीं। सुबह आठ और साढ़े आठ के बीच बंसगोपाल तथा कुछ अन्य साथियों सहित सआदत खाँ रेसीडेंसी बाजार पहुँच चुके थे। एक प्रत्यक्षदर्शी विवरण के अनुसार घोड़े पर सवार सआदत खाँ के सिर पर पगड़ी, उठे हाथ में नंगी तलवार तथा कमर में पिस्तौल बँधी थी। सआदत खाँ नागरिकों तथा सैनिकों से यह आह्वान कर रहे थे, “तैयार हो जाओ, आगे बढ़ो, साहिबों को

मार डालो, यह महाराजा का हुक्म है।” कर्नल ड्यूरेंड रेसीडेंसी की सीढ़ियों तक पहुँचे, इसके पहले सआदत खाँ के निर्देश पर तोपची महमूद खाँ रेसीडेंसी पर तोप से पहला गोला दाग चुके थे। रेसीडेंसी की सुरक्षा हेतु तैनात अधिकारी तथा सैनिक, विद्रोहियों की गोलाबारी का निशाना बने। पूर्व में पुराने गोदाम के पास रखी तीन तोपों के मुँह भी अब धमाके के साथ रेसीडेंसी की ओर खुल रहे थे।

इस बीच कर्नल ट्रेवर्स चार सवारों के साथ तोपचियों तक पहुँच गया। थोड़ी देर के लिए वह तोपचियों को भगाने में सफल रहा, लेकिन सआदत खाँ और ट्रेवर्स के बीच जमकर संघर्ष हुआ। सआदत खाँ के गाल पर ट्रेवर्स की तलवार से गहरा घाव हो गया।

इतने में भागीरथ सिलावट होलकरों का ध्वज लिए तथा युद्ध का बाजा बजाते हुए रेसीडेंसी पहुँच गए। फिर वही आवाजें “तैयार हो जाओ, आगे बढ़ो, साहिबों को मार डालो, यह महाराजा का हुक्म है।” ट्रेवर्स और उसके साथी भाग निकले। ट्रेवर्स तोपों पर कब्जा जमाने में असफल रहा। इधर सारी होलकर सेना बागी हो चुकी थी, उधर भोपाल, महिदपुर तथा भील पल्टन सैनिक टुकड़ियों ने क्रांतिकारियों

पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। महू से भी सहायता की तत्काल कोई उम्मीद नहीं थी। आखिर प्रातः 10 बजे कार्यवाहक ए.जी.जी. कर्नल ड्यूरेंड, कर्नल ट्रेवर्स स्त्रियों व बच्चों के साथ रेसीडेंसी के पिछले दरवाज़े से तोप गाड़ियों पर भाग निकले तथा सीहोर की ओर चले गए। पुरुषों को महिलाओं के वेश में ले जाया गया।

इसी बीच क्रांतिकारियों का संघर्ष पोस्ट ऑफिस, टेलीग्राफ, अस्पताल व रेसीडेंसी कार्यालय के कर्मचारियों से भी हुआ। इस संघर्ष में 39 गोरे मारे गए। रेसीडेंसी पर क्रांतिकारियों का कब्जा हो गया। आस-पास के बंगलों में आग लगा दी गई। रेसीडेंसी जेल से 300 कैदियों को आज़ाद करा लिया गया। गोरों के सिर काट दिए गए। कटे सिरों को लेकर सैनिक राजबाड़े तक गए। महाराजा को आवाज लगाई। राजबाड़े के गेट बंद कर दिए गए। अंग्रेज अफसर अंदर थे, महाराज को डर था कि कहीं क्रांतिकारी इन्हें घसीट कर न ले जाएँ। क्रांतिकारियों को वापस आना पड़ा। शुरू में तुकोजीराव द्वितीय को क्रांतिकारियों के साथ हमदर्दी थी। जख्मी होने के बाद सआदत खाँ व भागीरथ सिलावट तुकोजीराव के पास गए। महाराज ने उन सबके खाने-पीने की व्यवस्था की।

उधर महू में भी इंदौर की क्रांति की खबर पहुँचते ही रात को 23वीं नेटिव इन्फेन्ट्री ने विद्रोह कर दिया। कर्नल प्लाट, मेजर हेरिस तथा कैप्टन फेगन गोली से उड़ा दिए गए। 02 जुलाई की सुबह महू के क्रांतिकारी सैनिक भी इंदौर पहुँच गए और रेसीडेंसी में उन्होंने डेरा डाल दिया। खाने और खर्च करने की समस्या को हल करने के लिए सआदत खाँ के नेतृत्व में रेसीडेंसी खजाने की तिजोरियों को तोड़कर करीब नौ लाख रुपये के सिक्के तथा सोना आदि लूट लिया गया। खजाना देवास ले जाया गया। देवास महाराज ने वह करंसी रखकर दूसरी करंसी प्रदान की ताकि क्रांतिकारी सरलता से अपना उद्देश्य पूरा कर सकें। तीन दिन तक रेसीडेंसी एरिया पर क्रांतिकारियों का कब्जा रहा, उन्होंने होलकर स्टेट का झंडा रेसीडेंसी में फहरा दिया था। 02-04 जुलाई तक महाराजा के सामने ही सैनिकों का राज रहा।

01 व 03 जुलाई को सआदत खाँ व भागीरथ सिलावट राजमहल भी गए थे। महाराजा तुकोजीराव होलकर ने क्रांतिकारियों का नेतृत्व करने का आग्रह तो स्वीकार नहीं किया, लेकिन सआदत खाँ को खिल्लत प्रदान कर क्रांतिकारी सेना का सेनापति होना स्वीकार किया।

कर्नल ड्यूरेंड को इस बात का संदेह था कि यह हमला स्वयं तुकोजीराव ने करवाया है। तुकोजीराव महाराजा को अपने राजकर्मियों को इस बात की सफाई देने के लिए पत्र देकर अंग्रेज अधिकारी के पास भेजना पड़ा कि जैसे ब्रिटिश सरकार का अपने सैनिकों पर नियंत्रण नहीं रहा वैसा ही उनका भी नहीं रहा, वह ब्रिटिश सरकार के विरोधी नहीं हैं।

04 जुलाई, 1857 को छह तोप लेकर साथ सआदत खाँ और भागीरथ सिलावट इंदौर तथा महू के करीब तीन हजार क्रांति सैनिकों के साथ दिल्ली जाने के लिए ग्वालियर और आगरा की ओर रवाना हो गए। देवास, मक्सी, शाजापुर, राजगढ़, ब्यावरा, कोलारस तथा शिवपुरी में क्रांति का बिगुल बजाते हुए इंदौर की क्रांति सेना ग्वालियर जा पहुँची। ग्वालियर के भी कुछ सैनिक सआदत खाँ व भागीरथ सिलावट के क्रांति समूह में शामिल हो गए। अंग्रेजी सरकार द्वारा फूट डालने की कोशिश की गई। क्रांति सैनिक, फिर भी दिल्ली की ओर बढ़ते रहे। कहीं उनका स्वागत हुआ, कहीं उन्हें संघर्ष करना पड़ा। आगरा के पास मानोवर में इनकी अंग्रेज सेना से मुठभेड़ हुई, जिसमें 1500 क्रांति सैनिक शहीद हुए और क्रांतिकारी बिखर गए।

सआदत खाँ आगरा की मुठभेड़ व बिखराव के कारण अलवर आ गए। वहाँ से उज्जैन आए और अकबर खाँ के नाम से सेठ गंगाधर के यहाँ दो वर्ष तक नौकरी की। उसके बाद वे वेश और नाम बदलकर 13 वर्ष सलुम्बर, गुड़ी और बाँसवाड़ा में रहे। गाल पर तलवार का निशान होने से बाँसवाड़ा में उन्हें पकड़ लिया गया और इंदौर लाकर 01 अक्तूबर, 1874 को फाँसी दे दी गई।

क्रांतिकारी भागीरथ अपने साथियों सहित दिल्ली पहुँचे। वहाँ वे 16-17 दिन रुके। भागीरथ सिलावट, बहादुरशाह जफर के पुत्रों से मिले। वहाँ उन्हें बादशाह के पुत्र मिर्जा खुर्देश ने होलकर महाराजा के नाम एक पत्र दिया। वह बहादुरशाह जफर का संदेश अपने पेट पर पट्टा बाँधकर लाए। दिल्ली से लौटते समय भागीरथ सिलावट को अंग्रेजों द्वारा घात लगाकर देपालपुर के पास पकड़ लिया गया। उनके हाथ-पैर में बेड़ियाँ डालकर देपालपुर लाया गया व उन पर मुकदमा चलाया गया। भागीरथ सिलावट को फाँसी की सजा सुनाई गई। 23 अक्तूबर को सुबह 9:30 बजे देपालपुर के पास 'मोरवर्दी' नामक पहाड़ी पर आम के पेड़ से लटका कर फाँसी दे दी गई।

प्रति वर्ष देपालपुर में भागीरथ सिलावट का शहीद दिवस मनाया जाता है। आज भी देपालपुर में भागीरथ सिलावट की प्रतिमा लगी है।

बुंदेलखंड का जलियाँवाला बाग : चरण पादुका

–पंकज चतुर्वेदी

बुंदेलखड के लोग विदेशी शासकों के रवैये से परेशान आ गए थे। वहाँ की देशी रियासतें अंग्रेजों के इशारे पर लोगों का भारी दमन कर रही थीं। मनमाने टैक्स वसूले जा रहे थे। किसी के जन्म पर कर, जानवर मरने पर कर, यहाँ तक कि पिता की मौत पर भी कर देना पड़ रहा था। किसानों से साल में तीन-चार बार तो लगान वसूला जाता था। बुंदेलखंड में सिंचाई के साधन थे नहीं। खेती-किसानी बारिश के भरोसे थी। कभी बादल बरसे ही नहीं तो कभी ओले गिर गए। ऐसे में किसान की मेहनत और बीज के पैसे भी मिट्टी में मिल जाते थे, लेकिन शासकों को प्रजा की इन दिक्कतों से कोई वास्ता नहीं था। भूख से बेहाल किसान कर नहीं चुका पाता तो उसकी खड़ी फसल जला दी जाती। पालतू मवेशी हाँक कर ले जाते। कुछ नहीं मिलता तो घर के बरतन लूट कर आग लगा दी जाती। मार-पीट व औरतों को बेइज्जत करना तो साधारण बात थी।

उन दिनों 'नौगाँव' नामक जगह पर अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट रहता था। यहीं पर अंग्रेजों की फौज रहा करती थी। पोलिटिकल एजेंट का काम बुंदेलखंड की रियासतों पर नियंत्रण रखने का था। सही मायने में शासक तो पोलिटिकल एजेंट ही था। रियासतों के राजा तो बस उसके मनमाने आदेशों का पालन करने वाले मोहरे मात्र हुआ करते थे ।

बात सन् 1930 की है। सारा देश आज़ादी के लिए बेकरारी से मचल रहा था। उसी समय महात्मा गांधी बुंदेलखंड के दौरे पर आए। महोबा में उनके दर्शन करने वालों की भारी भीड़ थी। इन दिनों महोबा उत्तर

प्रदेश का एक जिला है। गांधीजी के आगमन से आज़ादी के मतवालों में नया जोश भर गया। देश के लिए अपनी जान की बाजी लगाने हेतु उतावले लोग गाँव-गाँव जाकर आज़ादी की अलख जगा रहे थे। वैसे भी बुंदेलखंड के लोग विदेशी सरकार के खिलाफ सन् 1857 के पहले से जंग लड़ रहे थे।

दमनकारी कर-प्रणाली और शासकों के आतंक के खिलाफ जनता को एकत्र करने का काम कुछ युवा ग्रामीण कर रहे थे। हालाँकि बुंदेलखंड में चंद्रशेखर आज़ाद, भाई परमानंद जैसे सशस्त्र क्रांतिकारी पहले से ही सक्रिय थे, लेकिन यहाँ के कुछ युवाओं ने जन-जागरण के लिए गांधीजी का रास्ता अपनाया। इनमें प्रमुख थे—ठाकुर हीरा सिंह, पंडित रामसहाय तिवारी और लल्लूराम शर्मा। ये लोग गाँवों में जाकर गांधी बाबा के अहिंसा धरनों का प्रचार करते थे। इसी कड़ी में 15 दिसंबर, 1930 को छतरपुर जिले के 'टटम' नामक गाँव में सभा की गई। 07 जनवरी, 1931 को गढ़ीमलहरा की सभा में तो हजारों लोग जमा हुए। इससे अंग्रेज सरकार के कान खड़े हो गए।

सारे भारत में 14 जनवरी को मकर संक्रांति का त्योहार अलग-अलग नामों से मनाया जाता है। बुंदेलखंड में इसे 'बुड़की' कहते हैं। 'बुड़की' यानी किसी नदी-तालाब में डुबकी लगाना। इस दिन बुंदेलखंड के लोग अपने घर के पास के किसी तालाब या नदी पर एकत्र होते हैं और शुभ लग्न के समय डुबकी लगाते हैं। फिर वहीं मेला लगता है। मेले में गन्ना, बेर-मकुईयां बिकती हैं। इस तरह बुड़की बुंदेलखंड के लोक जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण पर्व है ।

बुड़की के लिए 'चरण पादुका' को बेहद पावन माना जाता है। यह उर्मिल नदी के घाट पर स्थित है इस घाट के बारे में कहा जाता है कि त्रेता युग में वनवास के समय भगवान राम यहाँ रुके थे। नदी पार करने के लिए वे एक नाव पर सवार हुए थे। नाव पर

चढ़ते समय सीताजी के पैर का दबाव एक चट्टान पर पड़ गया था। इससे उस पाषाण पर सीताजी के पैर के निशान बन गए थे। तभी से इस जगह को 'चरण पादुका' के नाम से पूजा जाता है। बुड़की के अवसर पर उर्मिल नदी के इस घाट पर नहाने के लिए आस-पास के कई सौ गाँवों के लोग आज भी जमा होते हैं ।

चरणपादुका के सन् 1931 के शहीद : (पहला चित्र शहीद श्री सुन्दरलाल सेठ, गिलौहाँ का है जो 'प्रताप' के सौजन्य से प्राप्त हुआ है)

भारत माँ को आज़ाद करवाने के लिए दीवाने हो चुके युवकों ने चरण पादुका के बुड़की मेले को आम सभा के लिए चुना। सन् 1931 की वह मकर संक्रांति ग्रामीणों के लिए जैसे विशेष थी। हजारों-हजार लोग नदी में डुबकी लगाकर सभा में पहुँचने लगे। जैसे-जैसे भीड़ बढ़ रही थी, अंग्रेज अफसरों का गुस्सा भी ऊपर चढ़ रहा था। लोगों की धरपकड़ होने लगी। अंग्रेज पुलिस ने रामसहाय तिवारी को गिरफ्तार कर लिया। चूँकि तिवारीजी सबके अगुआ थे, सो अंग्रेजों को लगा कि सभा नहीं हो पाएगी, परंतु तय समय पर सभा शुरू हो गई। इसके सभापति सूरज प्रसाद, गिलौहाँ और मंत्री लल्लूराम शर्मा थे। कोई 30 से 35 हजार लोग शांति से भाषण सुन रहे थे। इनमें कई औरतें व बच्चे भी थे। यहाँ हो रहे भाषणों में उन घटनाओं को बताया जा रहा था, जिनमें अंग्रेज शासन ने अमानवीयता की हदें पारकर लोगों को प्रताड़ित किया था।

इतनी भीड़ देखकर अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट फिशर जैसे पागल हो गया। उस समय रामाधार मिश्र का भाषण चल रहा था। फिशर ने लोगों को तितर-बितर होने को कहा, पर भीड़ परवाह किए बगैर बैठी रही। फिशर ने इंदौर से बुलवाई गई कोल-भीलों की विशेष टुकड़ी को चारों और तैनात करवा दिया। यह फौज 15 लॉरियों में भर कर लाई गई थी। सैनिकों ने भीड़ को घेरकर मशीनगनें फिट कर दीं। इधर भाषण चल रहा था, और उधर फिशर ने गोली चलाने के आदेश दे दिए। कोई आधा घंटे तक मशीनगनों से धुआँधार फायरिंग हुई। कुछ ही पलों में मैदान में एक भी सिर नहीं दिख रहा था। चारों ओर खून में सने लोग तड़प रहे थे। 'भारत माता की जय' के नारे लग रहे थे। सिपाही लाशों को लॉरियों में भर रहे थे। वहाँ कितने मरे, कौन मरे उसकी कोई गिनती ही नहीं थी। उर्मिल नदी का पावन तट खून से लाल हो गया।

अंग्रेज सरकार ने कुछ दिन बाद एक बयान जारी किया था। बयान में कहा गया था कि हिंसक भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सिपाहियों ने 10 राउंड गोलियाँ चलाईं। इसमें 21 लोग मरे व 34 घायल हुए। सरकारी गजट के मुताबिक मरने वाले थे—धर्मदास मेहतो, निवासी खिरवा, आयु 28 साल; सेठ सुंदरलाल, गिलौहाँ, 27 साल; रामलाल मेहतो, गुनापुरवा, 24 साल; हल्के पटेल, बंधियनपुरवा, 24 साल; गोविंददास उर्फ चिरैया कुर्मी, गौमा, 30 साल; रघुराज सिंह, कटिया, 30 साल। वास्तव में यहाँ शहीद होने वालों की संख्या सैकड़ों में थी। इस गोली कांड के बाद सरजू प्रसाद ने सुंदरलाल की लाश महोबा ले जाकर कांग्रेस के दफ्तर में रखी और लोगों को बताया गया कि किस तरह अहिंसात्मक आंदोलन पर सरकार ने गोलियाँ चलवाई हैं। पुलिस ने लाश को जब्त कर लिया।

अंग्रेजों का आतंक यहीं नहीं रुका। कोल-भीलों की फौजों ने आम सभा आयोजित करने वाले अगुआ नेताओं के घरों को लूट लिया। उनके यहाँ एक बरतन तक नहीं बचा। खड़ी फसलें जला दी गईं। 31 लोग सभा करने के आरोप में गिरफ्तार किए गए। सरजू प्रसाद को चार साल व बाकी लोगों को तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, लेकिन उसके बाद हालात इतने बिगड़ गए थे कि पोलिटिकल एजेंट फिशर का वहाँ रहना मुश्किल हो गया था।

आज़ादी की लड़ाई निहत्थे लड़ने वालों पर गोली चलाने की इस घटना को 'दूसरा जलियाँवाला बाग कांड' कहा जाता है। यह स्थान आज मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में सिंहपुर गाँव के पास है। यहाँ एक प्रतीक स्मारक बना हुआ है। 'चरण पादुका' के नाम से चर्चित यह पावन स्थल विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल खजुराहो से मात्र 26 किलोमीटर की दूरी पर है।

यहाँ एक संस्कृत विद्यालय है। आज भी हर साल मकर संक्रांति पर 14 जनवरी को यहाँ बुड़की का मेला लगता है। हजारों लोग अपनी धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ उन शहीदों को भी याद करते हैं। विडंबना है कि किसी भी वेबसाईट पर इस स्थान या कांड की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। सरकारी रिकॉर्ड में इसे न तो धार्मिक स्थल के रूप में उल्लेखित किया गया है और न ही ऐतिहासिक संग्राम भूमि के नाम पर। हालाँकि यहाँ के स्मारक की आधारशिला बाबू जगजीवनराम ने रक्षा मंत्री के पद पर रहते हुए रखी थी। खजुराहो के लिए रेल सेवा शुरू हो चुकी है। अब उम्मीद की जाती है कि पर्यटकों की निगाह इस उपेक्षित श्रद्धा स्थल पर जरूर पड़ेगी।

हमारे वैज्ञानिकों ने भी झेला था उत्पीड़न

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में देश के असंख्य वीर सपूतों ने अपना बलिदान दिया है। आजादी से पूर्व के औपनिवेशिक युग में ब्रिटिश हुकूमत से समाज का हर तबका पीड़ित और व्यथित था। आम भारतीय अपमान, जुल्म और भेदभाव के बीच जीने को विवश था। ब्रिटिश हुक्मरानों द्वारा अपमान और उपेक्षा से भारत का वैज्ञानिक समुदाय भी अछूता नहीं था। हमारे वैज्ञानिकों को शोध के लिए उचित संसाधन, सुविधाएँ और वातावरण नहीं दिया जाता था। इसके अतिरिक्त शोध और नौकरी में उन्हें समान अवसर नहीं मिलता था। स्वतंत्रता पूर्व युग के दौरान हमारे वैज्ञानिकों को भी उत्पीड़न व अपमान का सामना करना पड़ा था और उन्होंने अपना भविष्य बलिदान कर दिया था। भेदभाव का आलम यह था कि ब्रिटिश शासक भारतीय वैज्ञानिकों की योग्यता और प्रतिभा पर संदेह किया करते थे और अकसर उन्हें वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए अयोग्य समझते थे। उनकी राय में भारतीय वैज्ञानिकों की बौद्धिक क्षमता ब्रिटिश वैज्ञानिकों से कम थी।

यहाँ भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौर के उन कुछ चुनिंदा भारतीय वैज्ञानिकों के जीवन की उन खास घटनाओं का जिक्र किया गया है जिससे यह व्यक्त होता है कि उन्होंने कैसे ब्रिटिश सत्ता का विरोध किया और सीमित संसाधनों व उपकरणों के द्वारा अपना अनुसंधान जारी रखा।

डॉ. मनीष मोहन गोरे

शिक्षा : पी-एच.डी. (वनस्पति विज्ञान), पत्रकारिता एवं जनसंचार।

संप्रति : डीएसटी के स्वायत्त संस्थान विज्ञान प्रसार में 12 वर्षों की सेवा के बाद वर्तमान में सी.एस.आई.आर. के संस्थान राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं सूचना स्रोत संस्थान (निस्केयर) में वैज्ञानिक।

लेखन : विज्ञान लेखन और विज्ञान संचार में सक्रिय। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विज्ञान लेखन। जंतु व्यवहार, जैव विविधता, विज्ञान कथा और विज्ञान संचार पर पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9999275292

ईमेल– mmgore1981@gmail.com

राधानाथ सिकदर (1813-1870)

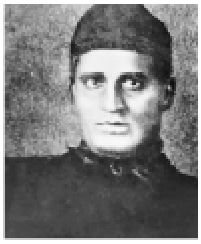

भारतीय वैज्ञानिकों को औपनिवेशिक काल में प्रायः उनकी उपलब्धियों के लिए उचित श्रेय नहीं दिया जाता था। उस दौर में अनेक भारतीय वैज्ञानिक अंग्रेजों की उपेक्षा के शिकार हुए। भारतीय गणितज्ञ और सर्वेक्षक राधानाथ सिकदर का उदाहरण उन्हीं में से एक है। उन्होंने माउंट एवरेस्ट की ऊँचाई मापने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की थी, लेकिन उन्हें इसका श्रेय नहीं दिया गया। सिकदर की मृत्यु के बाद उनके साथ एक और अन्याय किया गया। उन्होंने कैप्टन एच.एल. थुलियर एवं कैप्टन स्मिथ द्वारा संपादित पुस्तक 'मैन्युअल ऑफ सर्वेइंग फॉर इंडिया' को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इस पुस्तक के प्रथम एवं द्वितीय संस्करणों के प्राक्कथन में इस योगदान को स्वीकार किया गया था। 17 मई, 1870 को सिकदर की मृत्यु हो गई। सितंबर 1875 में जब उक्त मैनुअल का तृतीय अंक प्रकाशित हुआ तो उसमें उनका नाम हटा दिया गया था। हालाँकि प्रकाशकों का तुच्छ कृत्य छिप न सका। 1876 में 'फ्रेंड ऑफ इंडिया' नामक अखबार ने इस कुकृत्य को 'रॉबरी ऑफ द डेड (मृत-आत्मा की लूट)' शीर्षक से प्रकाशित किया।

प्रमथनाथ बोस (1855-1934)

प्रमथनाथ बोस का जन्म 12 मई, 1955 को बंगाल के भीतरी इलाके में स्थित गाँव, गायपुर में हुआ था। भूगर्भवेत्ता

प्रमथनाथ बोस ने लंदन विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातक किया और 1878 में रॉयल स्कूल ऑफ माइन्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण (जीएसआई) के साथ भूगर्भवेत्ता के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने अन्य कई उल्लेखनीय खोजों के साथ ही मध्य प्रदेश के धुल्ली और राजहारा में लौह अयस्क की खानों की खोज भी की थी। जीएसआई के तत्कालीन निदेशक एच. बीमेडिकॉट ने एक बार कहा था—“भारतीय लोग प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में कोई भी मौलिक कार्य करने में अक्षम हैं इसलिए हमें अपने कमजोर भाइयों के बारे में थोड़ी-सी समझदारी दिखानी चाहिए और उनसे चलने योग्य होने से पहले ही दौड़ने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए।” सबसे अधिक चौंकाने वाले भेदभाव का सामना प्रमथनाथ को उस वक्त करना पड़ा जब 1903 में उनकी वरीयता को ताक पर रखते हुए टी. हॉलैंड नामक एक ऐसे अंग्रेज को जीएसआई का निदेशक बना दिया गया जो उनसे 10 साल जूनियर था।

प्रमथनाथ के जीएसआई से अवकाश प्राप्त करने पर मयूरभंज के महाराजा ने उन्हें अपना भूगर्भीय सलाहकार नियुक्त कर लिया। प्रमथनाथ के जीवन का सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य था—मयूरभंज की गोरुमहिसानी पहाड़ियों में लौह अयस्क के भंडारों की खोज। इस खोज के बाद बोस ने जमशेद जी नसरवान जी टाटा को इसके बारे में लिखा जिसकी वजह से 1907 में टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी की स्थापना हुई।

जगदीश चंद्र बोस (1858-1937)

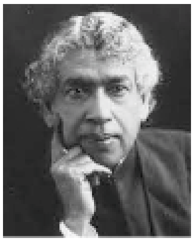

भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस की तुलना विश्व-प्रसिद्ध दार्शनिक-चित्रकार लियोनार्दो दा विंसी से की जा सकती है। बोस एक भौतिक विज्ञानी होने के साथ-साथ विज्ञान कथा लेखक भी थे। उन्होंने बांग्ला भाषा में पहली विज्ञान कथा ‘पलातक तूफान’ लिखी थी। उन्होंने ही सर्वप्रथम यह खोज की थी कि पौधों के अंदर भी हम मनुष्यों के समान संवेदनाएँ होती हैं। वे आविष्कारक भी थे। उन्होंने क्रेस्कोग्राफ यंत्र सहित अनेक यंत्रों का आविष्कार किया था जिनका उपयोग भौतिकी के अनुसंधान में किया जाता है।

पराधीन भारत में प्रफुल्ल चंद्र राय के समान जगदीश चंद्र बोस को भी अंग्रेजों की भेदभावपूर्ण नीति का सामना करना पड़ा था और उन्हें भी अंग्रेजों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। प्रेसिडेंसी कॉलेज, कलकत्ता में जब वे प्राध्यापक नियुक्त हुए तो उन्हें उसी पद पर नौकरी कर रहे किसी भी अंग्रेज की अपेक्षा एक-तिहाई वेतन दिया गया। इस भेदभाव का उन्होंने विरोध करते हुए लगभग तीन वर्षों तक कॉलेज से वेतन नहीं लिया और ब्रिटिश शासन को अंत में हार माननी पड़ी और न केवल जगदीश चंद्र बोस को अंग्रेजों के समान वेतन देना पड़ा, बल्कि उन्हें पिछले तीन वर्षों का बकाया वेतन भी दिया गया।

कादंबिनी गांगुली (1861-1923)

कादंबिनी गांगुली भारत की पहली महिला चिकित्सकों में से भी एक थीं। वे भारत की पहली दो महिला स्नातकों में से भी एक थीं। दूसरी महिला स्नातक थीं—चंद्रमुखी बोस। शैक्षणिक और व्यावसायिक दक्षता के अलावा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। 1882 में कला में स्नातक करने के बाद उन्होंने पाश्चात्य आयुर्विज्ञान का अध्ययन करने का निर्णय लिया। 1888 में तमाम बाधाओं के बावजूद उन्होंने कोलकाता मेडिकल कॉलेज से सफलतापूर्वक स्नातक किया क्योंकि उन दिनों कॉलेज में महिलाओं के लिए प्रवेश की अनुमति नहीं थी। आयुर्विज्ञान (मेडिकल साइंस) का अध्ययन करने के लिए कादंबिनी को 20 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति भी प्रदान की गई। आयुर्विज्ञान की शिक्षा के बाद उन्होंने कुछ दिनों तक लेडी डफरिन महिला अस्पताल में कार्य किया। एक भारतीय और विशेषकर महिला होने के कारण उन्हें अपने अंग्रेज सहकर्मियों और प्रशासनिक स्टाफ के भारी भेदभाव तथा विरोध का सामना करना पड़ा।

अपनी व्यावसायिक जिम्मेदारियों के अलावा वे ऐसे कई आंदोलनों में भी शामिल रहीं जिनका उद्देश्य भारत को स्वतंत्रता दिलाना था। बंगाल के विभाजन के दौरान उन्होंने बहुत से आंदोलनों को शीर्ष नेतृत्व प्रदान किया और 1908 में कोलकाता में महिला सम्मेलन का आयोजन किया। कादंबिनी ने पूर्वी भारत की महिला खदान-श्रमिकों के अधिकारों के लिए भी उल्लेखनीय योगदान दिया।

किशोरी मोहन बंद्योपाध्याय (1877-1929)

किशोरी मोहन ऐसे गुमनाम भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होंने अपने अंग्रेज अधिकारी की घोर उपेक्षा का सामना किया। वे अंग्रेज चिकित्सक रोनाल्ड रॉस के साथ कार्य करते थे। रोनाल्ड रॉस को मलेरिया परजीवी की खोज के लिए 1902 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। किशोरी मोहन ने रॉस के नोबेल संबंधी अनुसंधान कार्य में शुरू से लेकर अंत तक योगदान दिया था, लेकिन रोनाल्ड रॉस ने अपने इस सहकर्मी के योगदान का जरा भी आभार नहीं माना। उन्होंने न तो नोबेल पुरस्कार ग्रहण करते समय अपने व्याख्यान में किशोरी मोहन का कोई उल्लेख किया और न ही अपने शोध पत्र में।

इसकी पृष्ठभूमि में जाएँ तो ज्ञात होता है कि 1998 में जब किशोरी मोहन को पता चला कि रोनाल्ड रॉस को एक मेधावी वैज्ञानिक सहायक की तलाश है तो वे उससे मिले। रॉस उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा से बड़ा प्रभावित हुए। आगे चलकर किशोरी मोहन कोलकाता प्रेसिडेंसी जनरल अस्पताल में रॉस की अनुसंधान टीम में प्रयोगशाला सहायक के रूप में शामिल हो गए। किशोरी मोहन के दादाजी आयुर्वेद के मशहूर वैद्य थे। उन्होंने अपने इस पौत्र के मन में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति जिज्ञासा और प्रेम कूट-कूटकर भर दिया था।

> **“पराधीन भारत में अंग्रेज शासकों ने हमारे देश में अपना प्रभुत्व स्थापित करने और अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने देश में मौजूद स्थानीय संसाधनों का दोहन किया और हमारी वैज्ञानिक प्रतिभाओं को बुद्धि से कमजोर बताकर उनका अपमान व उत्पीड़न किया। मगर हमारे वैज्ञानिकों ने स्वतंत्रता संग्राम के समय वैज्ञानिक सत्याग्रह के जरिये अंग्रेजों की उपेक्षा और भेदभावपूर्ण नीति का जमकर विरोध किया।”**

औपनिवेशिक काल में यूरोपवासी शायद ही कभी भारतीयों के योगदान के प्रति कृतज्ञता का बहाव रखते थे। जब रोनाल्ड रॉस के द्वारा किशोरी मोहन के साथ पक्षपात किया गया तो उपेंद्र नाथ ब्रह्मचारी, जगदीश चंद्र बोस, बृजेंद्र नाथ सिंह, शिवनाथ शास्त्री, सुरेंद्रनाथ बनर्जी और प्रफुल्ल चंद्र राय जैसे वैज्ञानिकों ने लॉर्ड कर्जन से किशोरी मोहन के योगदान को मान्यता दिलाने की अपील की। उनकी अपील से सहमत होकर लॉर्ड कर्जन ने ड्यूक ऑफ कनॉट के दिल्ली दरबार में 1903 में किशोरी मोहन को सम्राट एडवर्ड सप्तम का स्वर्ण पदक प्रदान किया। बाद में किशोरी मोहन सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता बन गए। उन्होंने मलेरिया उन्मूलन के लिए बंगाल के गाँव-गाँव में जनजागरण अभियान शुरू किया। वे ग्रामवासियों को मलेरिया के बारे में जागरूक करने के लिए स्लाइड शो का आयोजन किया करते थे।

सी.वी. रमन (1888-1970)

विज्ञान के क्षेत्र में भारत ही नहीं, समूचे एशिया महाद्वीप में नोबेल पुरस्कार के पहले विजेता भारतीय वैज्ञानिक चंद्रशेखर वेंकट रमन को भी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अनेक बाधाओं और दुश्वारियों का सामना करना पड़ा था। सबसे बड़ी बाधा थी—वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए संसाधनों की कमी। रमन ने भी अपने समय के अन्य भारतीय वैज्ञानिकों की तरह विपरीत परिस्थितियों का सामना किया। जब रमन ने अपना पहला शोध पत्र प्रकाशित किया, उस समय उनकी उम्र सिर्फ 18 साल की थी। इस पत्र का शीर्षक था—“अनसिमैट्रिकल डिफ्रैक्शन बैंड्स ड्यू टू रैक्टेंग्युलर अपरचर” अर्थात आयताकार क्षेत्र के कारण असममित विवर्तन बैंड। इस युवा भौतिकीविद् का वैज्ञानिक ज्ञान और समझ उनकी उम्र के हिसाब से कहीं ज्यादा थी। जब उन्होंने ‘फिलॉसोफिकल मैगजीन’ में अपना दूसरा शोध पत्र प्रस्तुत किया तो इसके जवाब में प्रख्यात अंग्रेज भौतिकीविद् लॉर्ड रैले ने उन्हें एक पत्र लिखा। इस पत्र में रैले ने उन्हें प्रोफेसर रमन कहकर संबोधित किया था। रमन वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में काम करना चाहते थे, लेकिन अपने परिवार के आग्रह पर उन्होंने लगभग 10 वर्षों तक अंग्रेज सरकार के अधीन लेखा विभाग में सेवा की। शोध के प्रति उनके रुझान को तब गति मिली जब उन्होंने कलकत्ता (अब कोलकाता) में इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस (आईएसीएस) के कार्यालय में कदम रखा। यह संस्था उनके कोलकाता स्थित कार्यालय के रास्ते में पड़ती थी। वहाँ पर उन्हें भौतिकी में अपना अनुसंधान कार्य करने का अवसर मिला।

हालाँकि कोई वित्तीय और नैतिक समर्थन नहीं था, फिर भी रमन ने अपने अनुसंधान और प्रयोग जारी रखे। 1930 में ‘प्रकाश का प्रकीर्णन और उसके प्रभाव’ शीर्षक वाले उनके काम पर उन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। रमन को दिया गया यह सर्वोच्च सम्मान अंग्रेज शासकों की उस अवधारणा को सिरे से खारिज करने के लिए पर्याप्त था कि भारतीय वैज्ञानिकों में विज्ञान की समझ अंग्रेजों से कमतर है। जे.सी.बोस, एस.एन. बोस और एम.एन. साहा के समर्थन से रमन ने ‘इंडियन स्कूल ऑफ फिजिक्स’ का गठन किया। बाद के वर्षों में ए.डे, एस.के. बनर्जी, एस. अप्पा समयार, एस.के. मित्रा, डी.एन. घोष, टी.जे. चिन्मयानंदन, के.एस. राव और के.एस. कृष्णन आदि इस स्कूल का हिस्सा बने।

पराधीन भारत में अंग्रेज शासकों ने हमारे देश में अपना प्रभुत्व स्थापित करने और अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने देश में मौजूद स्थानीय संसाधनों का दोहन किया और हमारी वैज्ञानिक प्रतिभाओं को बुद्धि से कमजोर बताकर उनका अपमान व उत्पीड़न किया। मगर हमारे वैज्ञानिकों ने स्वतंत्रता संग्राम के समय वैज्ञानिक सत्याग्रह के जरिये अंग्रेजों की उपेक्षा और भेदभावपूर्ण नीति का जमकर विरोध किया। साथ ही, वे सीमित साधनों के साथ वैज्ञानिक अनुसंधान करते हुए देश के युवा शोधार्थियों को विज्ञान के अनुसंधान से जोड़ा। आज भारत की आजादी के 75वें वर्ष में हम जिस वैज्ञानिक प्रगति को देख रहे हैं, उसकी नींव दरअसल हमारे इन्हीं विज्ञान सपूतों ने रखी थी। उनके हम ऋणी हैं।

महान स्वतंत्रता सेनानी बारींद्र कुमार घोष

श्री बारींद्र कुमार घोष भारतीय उपमहाद्वीप के ब्रिटिश विरोधी स्वतंत्रता-संग्राम के प्रबल प्रतापी व्यक्तित्व, पत्रकार एवं महान क्रांतिकारी थे। वे पश्चिम बंगाल के कोन्नगर निवासी श्री कृष्णधन घोष के सबसे छोटे पुत्र थे। कृष्णधन घोष के सबसे बड़े पुत्र का नाम श्री विनयकृष्ण घोष, दूसरे पुत्र का नाम श्री मनमोहन घोष, तीसरे पुत्र का नाम श्री अरविंद घोष था। चौथी सुपुत्री थी, जिसका नाम सरोजनी घोष था। श्री कृष्णधन घोष लंदन के निकट 'नरवुड' नामक कस्बे में सुप्रसिद्ध चिकित्सक थे। इसके अलावा वे प्रसिद्ध जिला सिविल सर्जन भी थे। नरवुड में ही बारींद्र का जन्म 05 जनवरी, 1880 ई. में हुआ था। बारींद्र कुमार घोष की माता का नाम श्रीमती स्वर्णलता देवी था। वे सुप्रसिद्ध समाज सुधारक एवं विद्वान श्री राजनारायण

बसु की सुपुत्री थीं। राजनारायण बसु देवघर (झारखंड) से तकरीबन दो मील दूर रोहिणी में रहते थे। उनका पूरा खानदान अंग्रेज विरोधी था। वे लोग भारत मेला का आयोजन कर विभिन्न सभाओं में मंचों से राष्ट्रीय चेतना जगाने की बात करते, राष्ट्रीय चेतना-संपन्न कविताओं का पाठ इत्यादि करवाते थे। बारींद्र की आरंभिक शिक्षा ननिहाल (देवघर) में हुई थी। बचपन में ही अपने नाना, मामा आदि की राष्ट्रीय चेतना से वे अत्यंत प्रभावित हुए थे।

सुप्रसिद्ध अध्यात्मवादी एवं चिंतक महर्षि अरविंद, बारींद्र से बड़े थे। पहले वे बड़ौदा कॉलेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। ग्वालियर महाराज से उनका घनिष्ठ संबंध था। श्री मनमोहन घोष अंग्रेजी साहित्य के विद्वान एवं कवि थे। वे पहले पटना कॉलेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। बाद में वे ढाका कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर हो गए। भारत में बारींद्र कुमार घोष 'बारीन घोष' के नाम से अधिक जाने गए। देवघर के एक उच्च विद्यालय से एंट्रेंस की परीक्षा पास कर बारींद्र पटना कॉलेज में भर्ती हो गए, लेकिन वहाँ उनकी विधिवत पढ़ाई-लिखाई बहुत दिनों तक नहीं चल सकी।

बारींद्र ढाका में अपने मँझले भाई प्रोफेसर मनमोहन घोष के पास कुछ दिन रहे। वहाँ विख्यात गणितज्ञ श्री कालिपद बसु के स्नेहभाजन बने। उनके भाई ने उन्हें कृषि-व्यवसाय हेतु आर्थिक मदद देने का वचन दिया था, पर बाद में वे मुकर गए। निराश होकर वे देवघर लौट आए। वहाँ उन्होंने अपने एक मित्र की प्रेरणा से पटना कॉलेज के सामने एक चाय एवं छोटी-सी मनिहारी की दुकान खोल ली, परंतु वहाँ उसकी जमा-पूँजी डूब गई। वहाँ से वे बड़ौदा अपने भाई अरविंद घोष के पास चले गए। वहाँ उनकी मित्रता बड़ौदा के

डॉ. पंकज साहा

जन्म : 02 जनवरी, 1959

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.।

संप्रति : एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर (प.बं.)।

प्रकाशन : लगभग 10 पुस्तकें प्रकाशित, दो पत्रिकाओं के अतिथि संपादक के रूप में कार्य, अनेक पत्र-पत्रिकाओं, शोध-पत्रों में 300 से भी अधिक रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9434894190

ईमेल– dr.pankajsaha@gmail.com

सैन्य-विभाग के रेजिमेंट के एक एडजुटेंट (सहायक सैन्य अधिकारी) श्री माधव राव से हुई। वे शिकार करने के शौकीन थे। उन्होंने बारींद्र को रायफल एवं बंदूक चलाना सिखाया। वे उन्हें शिकार पर ले जाते थे। बड़ौदा में ही बारींद्र ने इतिहास एवं राजनीति-शास्त्र का गहन अध्ययन किया। ऐसे ही परिवेश, परिस्थिति एवं अध्ययन से बारींद्र के प्रतापी व्यक्तित्व का निर्माण एवं उनके अंदर क्रांतिकारी चेतना का उदय हुआ।

“‘युगांतर’ नामक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना अनुशीलन समिति के आंतरिक चक्र से की गई थी। इसके द्वारा आतंकवादी गतिविधियों को शुरू किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य था—‘खून के बदले खून’। ‘युगांतर’ पत्र ने बंगाल के नवयुवकों में क्रांतिकारी चेतना जगाने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई। बंगाल में ‘युगांतर’ की लोकप्रियता बढ़ती गई। ‘युगांतर’ की बढ़ती लोकप्रियता के कारण ब्रिटिश सरकार को बारींद्र पर शक होने लगा। अनेक बार प्रशासन द्वारा परेशान किए जाने के बावजूद बारींद्र ने हिम्मत नहीं हारी।”

बारींद्र अपने भाई अरविंद घोष से काफी प्रभावित थे। अरविंद की शिक्षा कैंब्रिज के किंग्स कॉलेज में हुई थी। उन्होंने आई.सी.एस. की खुली परीक्षा में भाग लिया एवं सर्वोच्च अंक प्राप्त किए, परंतु सरकारी नौकरी करने में उन्हें जरा भी रुचि नहीं थी। 1893 ई. में वे स्वदेश लौट आए। बड़ौदा कॉलेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक के रूप में उन्होंने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। वे मूलतः कवि थे, लेकिन देश की दुर्दशा देखकर उन्होंने 1902 ई. में देश की राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन का गुप्त प्रचार भी करना आरंभ कर दिया। 1905 ई. में उन्होंने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा प्रणीत ‘उग्र राजनीति’ का समर्थन किया। बंग-भंग की घोषणा होते ही उन्होंने ‘पांचजन्य’ फूँका और 1906 ई. में कलकत्ता आ गए।

देश की परिस्थिति एवं अपने अग्रज की क्रांतिकारिता से प्रभावित एवं उनसे अनुप्रेरित होकर बारींद्र भी कलकत्ता आ गए और स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़े। 20वीं शताब्दी के आरंभ में अरविंद घोष ने बंगाल के विभिन्न विप्लवी संगठनों को एकजुट करने के लिए अपने योग्य सहयोगी जीतेंद्र नाथ बनर्जी को दायित्व सौंपा था। उक्त कार्य में तेजी लाने हेतु जीतेंद्र नाथ का सहयोग करने के लिए उन्होंने बारींद्र को लगाया, लेकिन विचार-भिन्नता एवं कार्य-शैली में अंतर रहने के कारण बारींद्र की जीतेंद्र नाथ से नहीं पटी और उनमें वैमनस्य की सृष्टि हुई। तब बारींद्र ने श्री यतीन्द्र नाथ दास उर्फ बाघा जतीन के साथ मिलकर कलकत्ता में ‘युगांतर’ नामक एक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना की। इसके अलावा इन लोगों ने बंगाल के विभिन्न हिस्सों में क्रांतिकारी दलों को संगठित करना आरंभ किया।

सन् 1903 में कलकत्ता में श्री प्रमथनाथ मित्र एवं श्री सतीशचंद्र बोस ने एक व्यायामशाला की स्थापना की। श्री एम.एन. राय के सुझाव पर उसका नाम ‘अनुशीलन समिति’ रखा गया। अनुशीलन समिति सिर्फ नाम की व्यायामशाला थी। दरअसल उसका उद्देश्य युवाओं में क्रांतिकारी चेतना एवं देश-प्रेम जगाना था। उसकी लोकप्रियता के कारण उस समिति का दूसरा कार्यालय ढाका में 1904 ई. में खोला गया, जिसका नेतृत्व पुलिन बिहारी दास और पी. मित्रा ने किया। ढाका में उसकी लगभग पाँच सौ शाखाएँ थीं। उसके अधिकांश सदस्य स्कूल और कॉलेज के छात्र थे। सदस्यों को लाठी, तलवार और बंदूक चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। यह और बात है कि बंदूक उन्हें आसानी से नहीं मिलती थी।

बंगाल में क्रांतिकारी विचारधारा को फैलाने का श्रेय बारींद्र कुमार घोष और विवेकानंद के भाई भूपेन्द्र नाथ दत्त को ही जाता है। स्वदेशी आंदोलन के परिणामस्वरूप बारींद्र ने क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करने के लिए 1906 ई. में ‘युगांतर’ नामक एक बांग्ला साप्ताहिक पत्र एवं एक क्रांतिकारी पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। ‘युगांतर’ नामक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना अनुशीलन समिति के आंतरिक चक्र से की गई थी। इसके द्वारा आतंकवादी गतिविधियों को शुरू किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य था—‘खून के बदले खून’। ‘युगांतर’ पत्र ने बंगाल के नवयुवकों में क्रांतिकारी चेतना जगाने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई। बंगाल में ‘युगांतर’ की लोकप्रियता बढ़ती गई। ‘युगांतर’ की बढ़ती लोकप्रियता के कारण ब्रिटिश सरकार को बारींद्र पर शक होने लगा। अनेक बार प्रशासन द्वारा परेशान किए जाने के बावजूद बारींद्र ने हिम्मत नहीं हारी। 1907 ई. में उन्होंने क्रांतिकारी आतंकवाद की गतिविधियों का संयोजन करने के लिए बाघा जतीन एवं कुछ युवा क्रांतिकारियों के साथ कलकत्ता के ‘माणिकतल्ला’ नामक स्थान पर ‘माणिकतल्ला पार्टी’ का गठन किया। कलकत्ता के बत्तीस नंबर मुरारीपुकुर के बगानबाड़ी में उन्हीं की प्रेरणा से बम बनाने एवं हथियार, गोला-बारूद आदि को इकट्ठा करने का काम शुरू हुआ ताकि अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया जा सके।

उनके संगठन के सदस्य खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चंद्र चाकी ने 30 अप्रैल, 1908 ई. में बिहार के मुजफ्फरपुर में रात्रि के साढ़े आठ बजे यूरोपियन क्लब के सामने बम फेंककर तीन लोगों की हत्या कर दी थी। दरअसल वे मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की हत्या करना चाहते थे, परंतु असफल रहे। उस बम-कांड की पुलिस ने छान-बीन शुरू की। सुराग पाकर बत्तीस नंबर मुरारीपुकुर के बगानबाड़ी की तलाशी ली गई, जहाँ पुलिस को बम बनाने का कारखाना मिला। बारींद्र कुमार घोष एवं उनके कई साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। 21 मई, 1908 ई. को उन पर मुकदमा चलाया गया। वह मुकदमा 'अलीपुर बम कांड' के नाम से चर्चित हुआ। 06 मई, 1909 ई. को अलीपुर बम-कांड की सुनवाई हुई। न्यायाधीश ने बारींद्र कुमार घोष एवं उल्लासकर दत्त को मृत्युदंड की सजा सुनाई। उपेंद्र नाथ वंद्योपाध्याय, हेमचंद्र कानूनगो, विभूतिभूषण सरकार, वीरेंद्र सेन, सुधीर घोष, इंद्रनाथ नंदी, अविनाश भट्टाचार्य, शैलेंद्र नाथ बसु, ऋषिकेश कांजिलाल एवं इंदुभूषण राय को कालापानी की सजा हुई। परेश मल्लिक, शिशिर घोष, निरापद राय को दस वर्ष की सजा हुई। अशोक नंदी, बालकृष्ण हरिकोने, शिशिर कुमार सेन को सात वर्ष की सजा हुई। दीपांतर दत्त एवं जीवनकृष्ण सान्याल को एक वर्ष का कारादंड दिया गया।

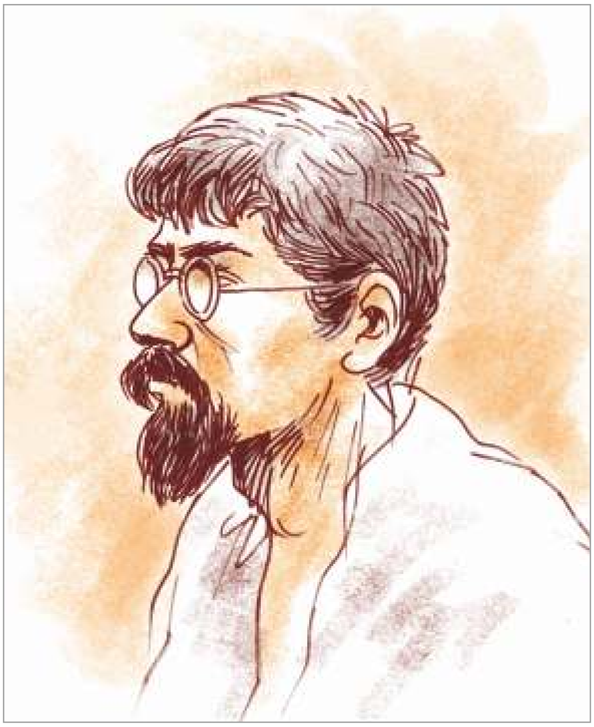

अपील करने पर बारींद्र कुमार घोष एवं उल्लासकर दत्त की मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया गया एवं उन्हें 1909 ई. में अंडमान के सेलुलर जेल में भेज दिया गया। उस जेल के बारे में यह प्रसिद्ध था कि वहाँ सजा काटना मौत से भी ज्यादा भयानक था, क्योंकि वह जेल क्रूर यातना देने के लिए बदनाम था। बारींद्र कुमार घोष के अग्रज अरविंद घोष को रिहा कर दिया गया एवं अन्य की सजा कम कर दी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1920 ई. में औपनिवेशिक सरकार द्वारा राजनीतिक बंदियों को आम क्षमा (General amnesty) देने का निर्णय लिया गया। उसी के तहत बारींद्र कुमार घोष को कलकत्ता लाकर मुक्त कर दिया गया। कलकत्ता में बारींद्र ने एक प्रिंटिंग प्रेस खोल लिया और वे पत्रकारिता का कार्य करने लगे, परंतु जल्द ही उन्होंने पत्रकारिता छोड़ दी और कलकत्ता में एक आश्रम की स्थापना की और व्यवसाय से अलग हो गए।

सन् 1923 में बारींद्र पांडिचेरी चले गए, जहाँ उनके भाई अरविंद ने सुप्रसिद्ध 'श्री अरविंद आश्रम' बनाया था। श्री अरविंद ने उन्हें अध्यात्म और साधना की ओर प्रेरित किया। वे अरविंद के आध्यात्मिक प्रभाव से 'साधना' के दर्शन की ओर आकृष्ट हुए। लेकिन बारींद्र ने पहले ही देवघर सत्संग के प्रतिष्ठाता श्री अनुकूल चंद्र ठाकुर से दीक्षा लेकर उन्हें अपना गुरु बना लिया था। अनुकूल चंद्र ने ही अपने अनुयायियों द्वारा बारींद्र की रिहाई का मार्ग प्रशस्त किया था।

सन् 1929 ई. में बारींद्र पुनः कलकत्ता आ गए और पत्रकारिता से जुड़ गए। 1933 ई. में उन्होंने 'द डॉन ऑफ इंडिया' (The Dawn of India) नामक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। वे सुप्रसिद्ध अखबार 'द स्टेट्समैन' से भी जुड़े एवं एक स्तंभकार के रूप में काफी ख्याति अर्जित की। 1950 ई. में वे बांग्ला दैनिक 'दैनिक बसुमती' के संपादक हो गए। इनके अलावा वे विभिन्न भाषाओं की अनेक साहित्यिक गतिविधियों से भी जुड़े रहे। कविता लिखने का शौक तो उन्हें स्कूली जीवन से ही था। बाद में उन्होंने अनेक पुस्तकों एवं लेखों का भी सृजन किया। उनकी लिखी हुई कुछ प्रमुख पुस्तकों के नाम हैं—द्वीपांतर बाँशी, पॉथेर इंगित, आमार आत्मकथा, अग्नियुग, ऋषि राजनारायण, श्री अरविंद आदि। अरविंद घोष, एम.एन. राय, चित्तरंजन दास आदि से संबंधित उनके लेख बहुचर्चित हुए थे।

बारींद्र कुमार घोष ने 1933 ई. में एक सम्मानित परिवार की विधवा शैलजा दत्ता से विवाह कर लिया था। 18 अप्रैल, 1959 ई. में 79 वर्ष की अवस्था में इस अमर क्रांतिकारी एवं महान पत्रकार का निधन हो गया।

बारींद्र कुमार घोष एक धर्मप्राण हिंदू थे, परंतु उनमें सांप्रदायिक कट्टरता बिलकुल नहीं थी। वे विभिन्न धर्म एवं दर्शन के समन्वय से एक सर्वव्यापी आत्मिक चेतना को फैलाने में सचेष्ट थे। आरंभ से ही उनका मानना था कि सिर्फ राजनीतिक चेतना ही काफी नहीं है, नौजवानों को आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए, लेकिन वे देश की स्वतंत्रता के लिए भी सदा सचेष्ट रहे। उन्होंने अनेक उत्साही युवाओं को संगठित किया एवं उन्हें यह बताते रहे कि स्वतंत्रता के लिए लड़ना पावन कर्तव्य है।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
आयुर्विज्ञान	**आयुर्विज्ञानम्**	**तिब्ब**	**तिब**	**तिब, वैदंगी**	**तिब, आयुर्विज्ञान**	**आरोग्यशास्त्र**	**आयुर्विज्ञान**	**आयुर्विज्ञान**	**आयुर्विज्ञान**	**आयुर्विज्ञान, चिकित्साशास्त्रो**
कुष्ठ (कोढ़)	कुष्ठः	कोढ़, कोढ़ूह	जुज़ाम	म्योंद	कोढु	कोड, महारोग	रक्तपिती	कोढ, कुष्ठ रोग	कुष्ठ, कोर, महारोग	कुष्ठ, महाब्याधि
कैंसर	कर्कटः	कैनसर	कैन्सर, सरतान	कन्सर	कैंसरु	कर्क	कॅन्सर, कोक्र	केन्सर	क्यान्सर, अर्बुद	बयानसार, कर्कट रोग
कै (वमन)	वमनम्	कै, उलटी	क़ै	द्रव्ख, कय	उल्टी, कै	वांती	ओंक	उलटी, वमन	बान्ता, वमन	बमि, बमन
खाँसी	कासः	खंघ, खांसी	खाँसी,	च़ास	खंघि	खोकला	खांक	खांसी, उधरस	खोकी	काशि, कासि
खुजली	कण्डु	खाज,	ख़ारिश	तॅछिन्य	ख़ारिस, खार्स	खाज	खाज	खुजली अळूर, चळ	लुतो, चिलचिलाइ	चुलकानि
चेचक	मसूरिका	माता, चेचक	चेचक	शुतल्य	माता, वडी माता	देवी	देवी, असूक	बळिया, माता	बिफर	बसंत
जुकाम	प्रतिश्यायः	जुकाम	जुकाम	जुकाम, नंजलु	जुकामु	पडसे, सर्दी	थंडी	सळेखम, शरदी	रुघा	सर्दि-ज्वर, सर्दि
ज्वर	ज्वरः	बुख़ार	बुख़ार	तफ	बुख़ार	ताप	जोर	ज्वर, ताव	जरो	ज्वर
टेटनस	धनुर्वातः	टैटनस	टेटनस	टेटनस	टेटनसु	धनुर्वात	धनुर्वात, धणकुटी	धनुर, धनुर्वा	धनुषटङ्कार	धनुषटंकार
तपेदिक (यक्ष्मा)	यक्ष्मन्	तपदिक्क	तपेदिक	सिल	तपेदिक, सिल्ह	क्षय	क्षयरोग	क्षयरोग	क्षयरोग, सुकेनास	यक्ष्मा, क्षयरोग
दमा	श्वासः	दमां	दमा	तम	दम, दमो	दमा	दमो, उसरमट	दमनो रोग	दम, धम्कीको रोग	हाँफानि (रोग)
पीलिया	पाण्डुरोगः	पीलीआ	यरक़ान	कांबल	कामीणु, कामिणु	कावीळ	कामीण	कमळो, कमळी	कमलपित्त, कामुला	पाण्डुरोग कोमला रोग

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
आयुर्विज्ञान	**आयुर्विज्ञान, लाइयेङ् मखल अमा**	**आयुर्विज्ञान**	**वैद्यशास्त्रमु**	**मरुत्तुवम्**	**आरोग्यशास्त्रम्**	**आयुर्विज्ञान**	**आयुर्विज्ञान, तिब्ब**	**आयुर्विज्ञान**	**आयुर्विज्ञान चिकित्सा शास्त्र**	**साव फाहामारि बिगियान,**
कुष्ठ	कुस्ती लाइथुङ्	कुष्ठ	कुष्ठु	तोळु नोय्	कुष्ठम्	कुष्ठ	कोढ़	मुडुक् आजार रगा	कुष्ठ (कोढ़)	खुरिया बेराम
केन्सार, कर्कट रोग	कैन्सर	क्यान्सर, कर्कट रोग	कैन्सरु	पुट्टु नोय्	कान्सर्	क्यान्सर, अर्बुद	कैंसर	कैनसार	कैंसर, कर्करोग	खेन्सार बेराम
बमि	ओबा, हन्दोकपा	बांति	वांति, डोकु, वमनमु	वांदि	वमनम्, छर्दि	वांति, उल्टी	कै, उल्टी	दोयोक्	बोकरव, रद	गेबानाय, गल'नाय
काह	लोक खुबा	काश	दग्गु	इरुमल्	चुम, कुर	केम्मु	खंघ, खांसी	खुः/खोः	उकासी, खोंखी	गुजुनाय
खाज, खजुवति, खजुली	हाकाचबा	कुंडिआ	दुरद	अरिप्पु	चोरिच्चिल्	तुरिके	खुश्क	बाबात्	नोचनी	माननाय, खुजालि
बसंत रोग	लाइकूप थोकपा	बसंत	मशूचि	वैसूरि, पेरिय, अम्मै	वसूरि	सिडुबु, मैलीबेने, अम्मा	माता, चेचक	बसंत	कोदबा	लोन्थि गेदेर, आइ, बसन्थ, बिमा
पानीलगा, सर्दि	लोक थूङबा	सर्दि	जलुबु, पडिशमु	जलदोषम्,	जलदोषम्, नीरिळक्कम्	नेगडि	जकाम, ठंड, सर्दी	मादा आथुम	सरदी, कफ रोग	गगा मोननाय
ज्वर, जर	अरुम लाइहौ	ज्वर	ज्वरमु	जुरम्, काय्च्चल्	ज्वरम्, पनि	ज्वर	बखार, ताप	रूवा	बोखार, जर, ज्वर	लोमजानाय, बेराम जानाय
धनुष्टंकार	तितानस	धनुष्टंकार	टिटानस	दनुर् वायु	टेटटनस्	टेटनस्, धनुर्वायु	टैटनस, चाननी	टिटनेस	धनुष्टंकार	बोरला बेराम, तितेनास
यक्ष्मा, क्षयरोग	टी.बी.	राजजख्मा, ख्ययरोग	क्षय रोगम्	कास रोगम्	क्षयम्, राजयक्ष्मावु	क्षय	निक्का बखार, तपेदिक	जखा, राज आजार	तपेदिक (यक्ष्मा), क्षयरोग	थै गोबानाय बेराम, जखखा बेराम
हंफानी आस्थामा	हारा	श्वास रोग	उब्बसमु	आस्तुमा, सुवास कासम्	आस्त्म, वलिवॅ	दम्मु, अस्तमा	दमा, साह्-दम	दमा	दमा, श्वास रोग, हँफनी	गुग्रा
कमला बेमार, पाण्डुरोग	जोनतिस, नापू कारकपा लैना	कालांमल रोग/पांडु रोग	पसिरीकलु	मंजळ् कामालै	मञ्ञप्पित्तम्	कामाले, कामणि	जरकान, पीलिया	जनडीस	पांडु रोग, कामला	फुर्साब जालानाय, थै गैये जालोनाय

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

बाल स्वातंत्र्य सेनानी कुमार शिरीष पुष्पेंद्र मेहता

सालों से भारतीय सभ्यता और सस्कृति का गौरव बढ़ाने के लिए महान हस्तियों ने अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया है। ऐसे ही एक वीर बलिदानी भारत माता की इस पावन धरती पर 1926 में जन्मे थे जिनका नाम शिरीष पुष्पेंद्र मेहता था। उन्हें 'शिरीष कुमार' के नाम से जाना जाता है। महज 16 साल की उम्र में देशप्रेम, स्वतंत्रता के लिए लड़ने का हुनर, अद्‌भुत साहस आदि गुणों से परिपूर्ण शिरीष कुमार मेहता ने अपने प्राण भारत माता और तिरंगे की रक्षा के लिए स्वातंत्र्य संग्राम के यज्ञ में अर्पण कर दिए।

साल 1926, देश में ब्रिटिश शासन के दमन और अत्याचार चरम पर थे। जगह-जगह पर लोग रैली एवं सभा आयोजित कर अंग्रेजों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद कर रहे थे। रैली और सभाओं के द्वारा आम जनता में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जनजागृति करने का विस्तृत कार्य हर जगह देशप्रेमी कर रहे थे। उनमें शिरीष कुमार के दादा भी शामिल थे। इसका न ही केवल बड़ों पर असर पड़ रहा था, बल्कि छोटे बालकों पर भी इसका सीधी तौर पर असर पड़ रहा था। जब भी अपने दादा को छोटा शिरीष भारत का झंडा उठाकर रैली में जाते देखता था तो धीरे-धीरे उसके मन में भी उनके साथ जाने की इच्छा होने लगती और वह अपने दादाजी के साथ रैली में जाने लगा। दादाजी के साथ ही शिरीष कुमार के माता और पिता भी बहुत बड़े देशभक्त थे। इसलिए घर में देशभक्ति का वातावरण होने के कारण, बचपन से ही शिरीष कुमार के मन में देशभक्ति के अंकुर फूटने लगे थे। इसी के चलते महज 12 साल की खेलने-कूदने की उम्र में ही शिरीष कुमार अपने दादा के साथ रैली में भाग लेने के लिए निकल पड़ते थे। जिस वक्त उनके उम्र के बच्चों को स्वतंत्रता के विषय में ज्यादा ज्ञान नहीं होता था, ऐसे समय में किसी बालक का देश के लिए कार्य करना कोई छोटी बात नहीं थी और केवल शिरीष कुमार की नहीं, बल्कि उनके दोस्त शशिधर केतकर, लालदास बुलाखि दास, घनश्याम गुलाब दास, धनसुख लाल गोवर्धन दास भी उनके साथ रैली एवं सभाओं में जाने लगे थे। छोटे बच्चों को रैली में देखकर बाकी क्रांतिकारियों का भी हौसला बुलंद हो जाता था। दादाजी को देखकर छोटे शिरीष में भी रैली को नेतृत्व करने के गुण आ गए थे।

उद्धव दिलीप गाड़े

जन्म : 07 मार्च, 1993

शिक्षा : व्यावसायिक नवीकरणीय ऊर्जा में स्नातक

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 7588011916

ईमेल– uddhavgade@gmail.com

वह साल था 1942। उस समय पूरा विश्व अस्थिरता की छाया में था। द्वितीय विश्वयुद्ध की गूँज सुनाई दे रही थी। एक तरफ विदेश में नेताजी सुभाष चंद्र बोस 'चलो दिल्ली' का नारा देकर एक-एक प्रदेश जीतते हुए धीरे-धीरे हिंदुस्तान की ओर कूच कर रहे थे। उसी समय शिरीष कुमार नाम का एक छोटा-सा सैनिक भी उनसे प्रभावित होकर अपने देश के लिए लड़ने हेतु सज्ज हो गया था। शिरीष कुमार पर नेताजी सुभाष चंद्र बोस का खासा प्रभाव पड़ा था। दूसरी तरफ द्वितीय विश्वयुद्ध में इंग्लैंड उलझ रहा था। इस स्थिति का फायदा उठाने हेतु महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू कर दिया था। इस आंदोलन की वजह से आज़ादी की लड़ाई सीमित न रहते हुए आम जनता तक पहुँच चुकी थी।

"09 सितंबर, 1942 का सूर्य उदित हुआ, किसी ने भी यह नहीं सोचा था कि आज भारत माता की गोद में कुछ बालवीर हमेशा के लिए गहन निद्रा में चले जाने वाले थे। महाराष्ट्र में स्थित एक छोटे से गाँव नंदुरबार में अंग्रेज सरकार को भारत से बाहर निकालने के लिए रैली का आयोजन किया गया था। रैली के द्वारा लोगों को बंद में सम्मिलित करने का भी क्रांतिकारियों का इरादा था। इसके तहत क्रांतिकारी 'भारत माता की जय' के नारे के साथ ही व्यापारियों को बंद का आह्वान भी कर रहे थे जिनमें शिरीष कुमार मेहता और उनके साथ बाल क्रांतिकारियों की टोली भी शामिल थी।"

09 सितंबर, 1942 का सूर्य उदित हुआ, किसी ने भी यह नहीं सोचा था कि आज भारत माता की गोद में कुछ बालवीर हमेशा के लिए गहन निद्रा में चले जाने वाले थे। महाराष्ट्र में स्थित एक छोटे से गाँव नंदुरबार में अंग्रेज सरकार को भारत से बाहर निकालने के लिए रैली का आयोजन किया गया था। रैली के द्वारा लोगों को बंद में सम्मिलित करने का भी क्रांतिकारियों का इरादा था।

इसके तहत क्रांतिकारी 'भारत माता की जय' के नारे के साथ ही व्यापारियों को बंद का आह्वान भी कर रहे थे जिनमें शिरीष कुमार मेहता और उनके साथ बाल क्रांतिकारियों की टोली भी शामिल थी। हमेशा की तरह शिरीष अपने हाथों में भारत का झंडा लेकर रैली के अग्र स्थान पर आ पहुँचे थे।

क्रांतिकारियों को पुलिस ने वापस जाने और झंडा उनके हवाले करने के लिए अंतिम चेतावनी देते हुए उनकी ओर बंदूकें तान दीं। बहादुर शिरीष कुमार इससे न डरते हुए उल्टा पुलिस के आँखों में आँखें डालकर उन्हें ही ललकारते हुए खुद के सीने की ढाल बनाकर खड़े हो गए, और कहा कि अगर आपकी हिम्मत है तो सबसे पहले मुझ पर गोली चलाओ।

इसके बाद भड़क उठे ब्रिटिश अधिकारी ने शिरीष कुमार और उनके साथियों पर गोलियाँ चलाने का आदेश दे दिया। बस कुछ ही क्षणों में बंदूकों की आवाज से आकाश गूँज उठा। एक के बाद एक वीर इस धरती माँ की गोद में सोने लगे। गोलियों से शिरीष कुमार और उनके साथियों के शरीर छलनी होने लगे। उनके शरीर खून से लथपथ होने लगे, फिर भी वे पीछे नहीं हटे।

इस बर्बर्तापूर्ण कृत्य के लिए पूरे देश में अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठने लगी।

अंडमानी आदिवासियों का स्वातंत्र्य संघर्ष अबरडीन की लड़ाई

ब्रिटिश साम्राज्य की हित भावना को सर्वोपरि रखने के कारण अंग्रेज इतिहासकारों ने न जाने कितने ही स्वातंत्र्य संघर्षों, मुठभेड़ों तथा विरोधों को इतिहास में स्थान नहीं दिया और अगर दिया भी तो मात्र नामोल्लेख के रूप में। उन्हीं का अनुकरण करते हुए कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी अनेक महत्वपूर्ण स्वातंत्र्य संघर्षों की अनदेखी की अथवा उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। ऐसी अनेक घटनाओं में से एक है—'अबरडीन की लड़ाई' जिस पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है।

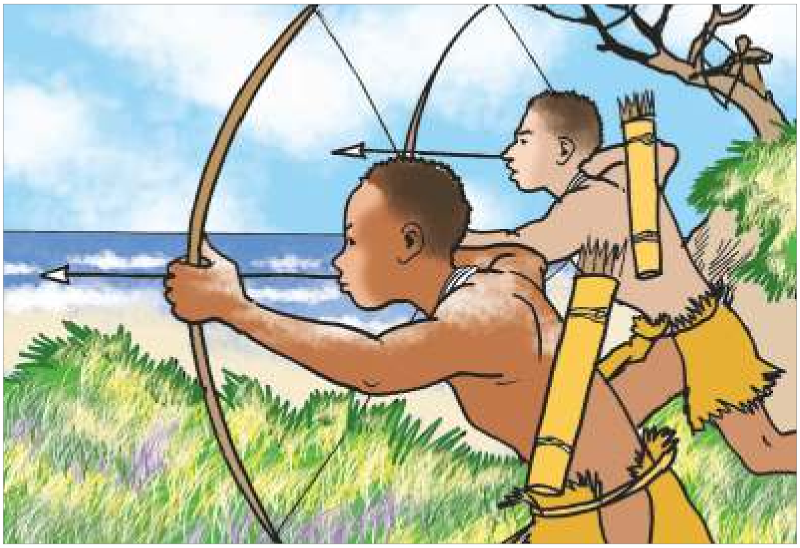

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

जन्म : 01 अक्तूबर, 1959, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : हिंदी में एम.ए., पी-एच.डी.।

संप्रति : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय, पोर्टब्लेयर, अंडमान।

प्रकाशन : कविता, कहानी, आलोचना, लोककथा आदि पर 30 पुस्तकें प्रकाशित। इनके अलावा 32 पुस्तकों में सहलेखन।

सम्मान : विश्व हिंदी सम्मान, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना' पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'रामविलास शर्मा सर्जना पुरस्कार', विद्या वाचस्पति और विद्या वारिधि की मानद उपाधियों सहित अन्य दर्जनों पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त।

संपर्क : मोबाइल— 9434286189
ईमेल— tripathivyasmani@gmail.com

चूँकि यह लड़ाई अंग्रेजों के विरुद्ध अंडमानी आदिवासियों की थी इसलिए संपूर्ण विवरण और तथ्यों के साथ इसे उजागर करने में अंग्रेजों की कोई ख़ास दिलचस्पी का न होना स्वाभाविक था, किंतु भारतीय लेखकों को तो इसकी गहरी छानबीन करनी चाहिए थी।

'अबरडीन की लड़ाई' की तिथि अलग-अलग पुस्तकों में अलग-अलग दी हुई है। 'जाग्रत अण्डमान' पुस्तक के लेखक कोन्नियूर आर. नरेंद्र नाथ ने 'अबरडीन की लड़ाई' की तिथि 14 मई, 1859 मानी है। राजेंद्र प्रताप सिंह (द्वीपसमूह का सांस्कृतिक अध्ययन), राजेंद्र पाल शर्मा (अंडमान कल, आज और कल), डॉ. परमानन्द पांचाल (अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह), व्यास मणि त्रिपाठी (अंडमान तथा निकोबार के आदिवासी और उनकी बोली) आदि की पुस्तकों में यही तिथि उल्लिखित है, जबकि आनंद वल्लभ शर्मा 'सरोज' ने 'द्वीप दर्पण' में लिखा है—

"सोलह मई अठारह सौ उनसठ की थी
वह अँधियारी रात,
अण्डमानियों ने हमले की अबरडीन पर
सोची बात ॥"

अंडमानी आदिवासियों ने अबरडीन पर हमले की बात 16 मई की अँधेरी रात में सोची, लेकिन वह युद्ध किस तारीख़ को हुआ, इसका जिक्र नहीं है। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को समर्पित पुस्तक 'विज़िट ऑफ द प्रेसिडेंट ऑफ इंडिया टू अंडमान एंड निकोबार आइलैंड्स टू फेलिसिटेट फ्रीडम फाइटर्स' में विकास कुमार गुप्त ने 'अबरडीन की लड़ाई' की तिथि 17 मई, 1859 दी है। डॉ. ओमप्रकाश मल्होत्रा ने अपने शोध-प्रबंध में इसी तारीख़ का उल्लेख किया है। प्रीतेन रॉय और स्वप्नेश चौधरी ने भी यही तारीख़ मानी है। वस्तुतः 17 मई, 1859 की तिथि

का आधार सन् 1899 में प्रकाशित एम.वी. पोर्टमैन की पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ अवर रिलेशंस विथ दी अंडमानीज' है। बहादुर राम टम्टा आदि कई लेखकों ने किसी तिथि के उल्लेख के बिना ही अबरडीन युद्ध की चर्चा की है।

वैसे तो अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह में अंग्रेजों द्वारा उपनिवेश स्थापना के प्रथम प्रयास के समय भी आदिवासियों और उनके बीच छिटपुट मुठभेड़ें हुई थीं, किंतु आदिवासियों के संगठित और योजनाबद्ध आक्रमण 10 मार्च, 1858 के बाद हुए। बंदी उपनिवेश की गति बढ़ने के साथ ही पेड़ों की कटाई और जंगल की सफाई का कार्य तीव्र हुआ। इसे अंडमानी आदिवासियों ने अपनी सीमा में घुसने का प्रयास माना। ज़ाहिर है सबको अपनी धरती और अपना देश प्यारा होता है। यह बात अंडमानी आदिवासियों के लिए भी लागू होती है। अंग्रेजों ने जब अंडमान में कैदी बस्ती बसानी शुरू की तब यह स्वाभाविक था कि आदिवासियों की धरती छिन जाती, शिकार और संग्रह पर जीवित रहने वाली जनजाति की वन संपदा को नुकसान पहुँचाया जाता, कंद, मूल, फल का आहार करने वाली, वनस्पतियों से औषधि बनाने वाली जाति के पेड़-पौधों को काटा जाता, उनके वन्य पशुओं की क्षति पहुँचाई जाती। अंग्रेजों द्वारा यह सब किए जाने पर आदिवासियों के मन में विद्रोह की ज्वाला का भड़कना अस्वाभाविक नहीं था। आनन्द वल्लभ शर्मा 'सरोज' ने उनके प्रबल आक्रोश को इस प्रकार वर्णित किया है—

"उनकी सीमाओं में आकर करें अजनबी लोग प्रवेश,
कभी नहीं बरदाश्त उन्हें था इसीलिए आया आवेश।
जंगल काटे जाने से भी उनमें पनप रहा था रोष,
वाकर के आक्रामक रुख से और बढ़ गया उनमें जोश॥

(द्वीप दर्पण)

अंडमानी आदिवासियों का पहला आक्रमण कब हुआ, इस पर कई मत हैं। राजेंद्र प्रताप सिंह ने अपनी पुस्तक 'द्वीपसमूह का सांस्कृतिक अध्ययन' में किसी तिथि का उल्लेख किए बिना ही 'मार्च 1859' लिखकर उसका संक्षिप्त विवरण दे दिया है। उनके अनुसार इस आक्रमण में लगभग सौ आदिवासियों ने तीर-कमान से सज्जित होकर अंग्रेजी नौ सेना की एक टुकड़ी पर हमला किया, किंतु इस आक्रमण में कोई हताहत नहीं हुआ। गोली चलने पर आदिवासी जंगल में भाग गए। राजेंद्र प्रताप सिंह की ही मानें तो अंडमानी आदिवासियों का दूसरा आक्रमण 06 अप्रैल, 1859 को हुआ था। इसमें लगभग दो सौ आदिवासियों ने तीर-कमान से सज्जित होकर उस डिवीजन पर हमला किया जो चाथम द्वीप के सामने आवासीय व्यवस्था के कार्यक्रम में जुटा हुआ था। इसमें मरने वालों की संख्या तीन बताई गई है।

अंडमानी आदिवासियों का तीसरा और अंतिम बड़ा संगठित आक्रमण 17 मई, 1859 को अबरडीन पर हुआ जिसे इतिहास में 'अबरडीन की लड़ाई' के नाम से जाना गया। अब तक के संघर्षों से आदिवासियों को यह विश्वास हो गया था कि वे संगठित होकर अपने परंपरागत हथियारों से अंग्रेजों से लोहा ले सकते हैं। इसलिए लगभग 1150 आदिवासियों ने तीर-कमान से सज्जित होकर अबरडीन पर आक्रमण की योजना बनाई। इसकी जानकारी दूधनाथ तिवारी को थी जिसने आदिवासियों के साथ छल किया। दूधनाथ तिवारी का इतिहास यह था कि वह 14वीं रेजीमेंट, बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री का सिपाही था। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण उसे झेलम के आयुक्त द्वारा 27 सितंबर, 1857 को आजीवन कारावास की सज़ा सुनाई गई। कैदी नंबर 276-दूधनाथ तिवारी हिज मजेस्टीशिप रोमन एम्परर द्वारा 06 अप्रैल, 1858 को अंडमान पहुँचा था। यहाँ के

भयंकर वातावरण तथा कठोर कैदी जीवन से ऊबकर स्वतंत्रता प्राप्ति की आशा में वह 90 अन्य क़ैदियों के साथ 23 अप्रैल, 1858 को रॉस द्वीप से भाग निकला। इस दल का विश्वास था कि जंगलों से होकर ये लोग उत्तरी अंडमान के पूर्वी तट से बर्मा पहुँच जाएँगे, किंतु रास्ता भूल जाने के कारण ये सभी जंगल में भटकते रहे। भोजन, पानी के अभाव में मार्ग में पड़ने वाले छोटे नालों तथा बेंत की छाल से निकले मीठे पानी से अपनी भूख-प्यास मिटाते रहे। अंत में एक दिन ऐसा भी आया जब उन्हें अपने बारह साथियों को भोजन-पानी नहीं मिलने के कारण मृत अवस्था में छोड़कर आगे बढ़ना पड़ा। 14वें दिन इस दल की मुठभेड़ आदिवासियों के साथ हुई जिसमें दूधनाथ तिवारी सहित तीन लोगों को छोड़कर शेष सभी मारे गए। ये तीनों अपने को बचाते और भागते हुए जा रहे थे कि आदिवासियों के एक दूसरे दल ने इन पर हमला कर दिया। तिवारी के दोनों साथियों की मृत्यु हो गई और वह घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। उसने संकेतों से अपने प्राणों की भिक्षा माँगी। आदिवासियों के दल के एक बुजुर्ग ने तिवारी को उठाया। उसके शरीर के वस्त्रों को फाड़कर फेंक दिया और उसके शरीर पर लाल मिट्टी का लेप कर दिया। अब वह इस दल का सदस्य मान लिया गया। अन्य लोगों की तरह वह भी सिर मुड़ाकर नंगा रहकर शिकार और संग्रह का जीवन व्यतीत करने लगा।

दूधनाथ तिवारी को अपने बुद्धि-कौशल से इस आदिवासी समूह का विश्वास-पात्र बनने में देर नहीं लगी। वह इस दल में इतना

घुल-मिल गया कि एक वरिष्ठ आदिवासी ने 'लीपा' नामक 20 वर्षीय अपनी पुत्री का विवाह इसके साथ कर दिया। कुछ दिन बाद एक दूसरे आदिवासी ने भी 'जीगा' नामक अपनी बेटी दूधनाथ तिवारी के साथ ब्याह दी। चूँकि तिवारी अब इस आदिवासी समुदाय का विश्वास-पात्र बन गया था इसलिए अबरडीन पर आक्रमण की योजना बनाते समय उससे कोई बात गुप्त नहीं रखी गई थी, किंतु तिवारी के मन में और ही खिचड़ी पक रही थी। वह अंतर्द्वंद्व के झूले में झूल रहा था। आनन्द वल्लभ शर्मा 'सरोज' के अनुसार—

"चलीं डोंगियाँ सागर उर पर लहरों पर लहराता जोश।
हर दिल में था एक बवंडर खो बैठे थे अपना होश॥
इधर तिवारी के मन-ही-मन उमड़ रहा था अंतर्द्वंद्व।
आदिवासियों का अति अद्‌भुत देख-देख कर यह छल-छंद॥"

(*द्वीप दर्पण*)

17 मई, 1859 को पहले अंडमानी आदिवासी अबरडीन के आस-पास की पहाड़ियों पर इकट्ठा होना शुरू हो गए। अंडमानियों के एक दल के साथ दूधनाथ तिवारी भी पोर्टब्लेयर के सन्निकट आ पहुँचा। उसके मन में छल और विश्वासघात का भाव पैदा हो ही गया था। उसने सोचा कि अगर इस युद्ध की योजना का पर्दाफ़ाश अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष कर दिया जाए तो उसे माफी मिल सकती है और वह मुख्यभूमि (अपने जन्म स्थान) वापस लौट सकता है। विडंबना देखिए कि जो दूधनाथ तिवारी झेलम में अंग्रेजों का विद्रोही था। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते समय अपने बाल-परिवार और अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की थी। वही आज भोले-भाले आदिवासियों के साथ छल करने पर उतारू था। उसने अपनी भोली-भाली पत्नी, अपने आश्रयदाताओं और सबसे बड़ी बात कि जो अपने जल, जंगल, ज़मीन की मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे थे, आज़ादी का सपना देख रहे थे, उनकी परवाह नहीं करके अंग्रेजों द्वारा माफी पाने के तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत हो अंडमानी दल से छिप-छिपाकर अंग्रेजों तक पहुँचने में सफल हो गया। उसने बंदी उपनिवेश के अधीक्षक डॉ. जेम्स वाकर को आदिवासियों द्वारा किए जाने वाले भयंकर आक्रमण की सूचना दे दी। फिर क्या था अंग्रेज शासक सतर्क हो गए। आक्रमण की प्रचंडता का अनुमान लगाते हुए उन्होंने उपनिवेश के बचाव के लिए अत्यंत कड़े प्रबंध कर लिए। आदिवासियों को अबरडीन तथा अटलांटा प्वाइंट की पहाड़ियों से धावा बोलना था, किंतु हमले की पूर्व सूचना मिल जाने के कारण अंग्रेजों ने इन दोनों स्थानों पर कठोर मोर्चाबंदी कर दी थी। इसके अतिरिक्त नौसैनिक जहाज़ रॉस द्वीप के पास खड़ा कर दिया ताकि ज़रूरत पड़ने पर वहाँ से भी गोलीबारी की जा सके।

निश्चित योजना के अनुसार 17 मई, 1859 को अंडमानी आदिवासियों ने 'अबरडीन' तथा 'अटलांटा प्वाइंट' नामक दो स्थानों पर ज़ोरदार हमला कर दिया। इसकी भीषणता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आक्रांताओं को रोकने हेतु नौसेना के लेफ्टिनेंट वार्डन अपने सैनिकों की एक टुकड़ी के साथ रॉसद्वीप और अबरडीन के बीच खड़े 'चारलोट' नामक जलयान से उतरकर अबरडीन की पहाड़ी तक गए थे, किंतु आक्रमण की भीषणता के कारण उन्हें वापस जलयान पर लौट आना पड़ा था। अंग्रेजों ने सशस्त्र नौसेना सतर्कता दल अबरडीन की पहाड़ियों की ओर रवाना किया जिसके कुछ सदस्य पहाड़ी पर चढ़ गए। उनकी रक्षा के लिए उनके पीछे क़ैदियों का एक दल भी था। सेना के कमांडिंग ऑफिसर लेफ्टिनेंट कर्नल हेलार्ड और लेफ्टिनेंट फिलब्रिक स्थिति की निगरानी कर रहे थे। उधर युद्धपोत में मोर्चा सँभाले नौसैनिकों ने सागर के किनारे-किनारे आने वाले आदिवासियों को गोलियाँ चलाकर रोकने का प्रयत्न किया, किंतु इस भीषण गोलीबारी की परवाह नहीं करते हुए कुछ अंडमानी अबरडीन की पहाड़ी पर चढ़ने में सफल हो गए। उन्होंने अपने प्रखर बाणों से इस तरह हमला किया कि अंग्रेजों का नौसेना सतर्कता दल पीछे हटने पर मजबूर हो गया। यद्यपि दूसरी ओर से अंग्रेज गोलीबारी कर रहे थे तथा समुद्र में खड़े युद्धपोतों से भी गोलियाँ बरस रही थीं, फिर भी अंडमानियों ने अबरडीन तथा अटलांटा प्वाइंट के क्षेत्र पर घंटों अधिकार जमाए रखा।

आदिवासी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़े हुए लोग उनके शत्रु नहीं, बल्कि सहानुभूति और दया के पात्र हैं। उनकी नज़र में अंग्रेज तथा क़ैदियों के गिरोह के मुखिया, जिन्हें वे लाल साफे और बैज से पहचानते थे, ही उनके दुश्मन थे। वे ही उनकी ज़मीन पर कब्जा करने वाले लोग थे। अतः अंडमानी उन्हें ही समाप्त करना चाहते थे जिससे उनकी भूमि की रक्षा हो सके, उनकी स्वतंत्रता की रक्षा हो सके। इसलिए वे जी-जान से लड़ रहे थे, किंतु अंग्रेजों के पास आधुनिकतम हथियार थे। शस्त्र बल और बुद्धि-कौशल से अंग्रेज अबरडीन की पहाड़ियों पर चढ़ने में सफल हो गए। वहाँ उन्होंने आदिवासियों का जमकर संहार किया तथा बचे और घायलों को जंगलों में भागने के लिए विवश कर दिया। अपनी मातृभूमि की रक्षा में कितने आदिवासियों को जान से हाथ धोना पड़ा, कितने घायल और अपंग हुए, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस नरसंहार का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक ओर परंपरागत तीर-धनुष जैसे हथियार थे तो दूसरी ओर गोला-बारूद जैसे आधुनिक हथियार। ज़ाहिर है हताहतों में तीर-धनुष वाले अधिक रहे होंगे। अंडमानी आदिवासियों की हार का कारण दूधनाथ तिवारी था जिसने उनकी योजनाओं का खुलासा अंग्रेजों के सामने पहले ही कर दिया था। उसके इस कुकृत्य के बदले अंग्रेजों ने उसे माफी देकर मुख्य भूमि भेज दिया।

अंडमानी आदिवासी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए, लेकिन अपनी मातृभूमि की रक्षा का उनका प्रयत्न स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। उन वीर योद्धाओं की स्मृति में एक स्मारक पोर्ट ब्लेयर स्थित अबरडीन जेट्टी के परिसर में बनाया गया है।

मुजफ्फरपुर बम कांड

भारत में फिरंगियों ने जितनी बर्बरता और अमानवीयता का परिचय दिया, उसकी जितनी भी निंदा की जाए कम होगी। देश के प्रति शहीदों की कुर्बानियाँ इनसान भले ही भूल जाए, परंतु इतिहास उन्हें कभी नहीं भूल पाएगा। अंग्रेजों के कदम पड़ने के बाद भारत का सुनहरा इतिहास कब काले पन्नों में दफन हो गया, पता ही नहीं चला। आदिवासी विद्रोह से लेकर आजादी की लड़ाई तक अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति से टकराने के लिए समय-समय पर अनेक क्रांतिकारियों द्वारा अनेक योजनाओं को अंजाम दिया गया। इन योजनाओं में नव युवा वर्ग ने अपनी भूमिका तो शिद्दत से निभाई ही, साथ ही देश की आजादी के लिए अंग्रेजों की गोलियों के निशाना भी बने तथा फाँसी के फंदे को भी चूमा। फिरंगियों ने देशभक्तों के मनोबल को तोड़ने के लिए अनेक प्रकार की अमानवीय यातनाएँ दीं, परंतु मातृभूमि को स्वतंत्र देखने की इच्छा ने सेनानियों को दीवाना बना दिया था।

सन् 1897 में पूना में चापेकर बंधुओं द्वारा आयर्स्ट व रैंड की हत्या जैसे कार्यों ने नौजवानों में चेतना पैदा कर दी थी। इसी के बाद बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र में दु:साहसी व बलिदानी नौजवानों के ऐसे संगठन बनने लगे थे, जिनका विश्वास था कि वे कुछ अंग्रेजों की हत्या कर उन्हें भारत से भागने पर मजबूर कर देंगे। 'मुहब्बिताने वतन', 'अनुशीलन' व 'युगांतर' ऐसे ही संगठन थे।

आजादी के दीवानों में से मुजफ्फरपुर बम कांड के क्रांतिकारी खुदीराम बोस सुपुत्र त्रिलोक्यनाथ बोस मिदनापुर, बंगाल के निवासी थे। खुदीराम बोस 'स्वदेश वीविंग स्कूल' मिदनापुर में अध्यापक थे। 28 फरवरी, 1906 को मिदनापुर में कृषि प्रदर्शनी के दौरान खुदी को आपत्तिजनक पोस्टर का वितरण करते हुए पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। 27 अप्रैल, 1906 को मिदनापुर में 15 वर्षीय खुदीराम बोस पर धारा 124ए, 505 भारतीय दंड संहिता में मुकदमा चला और प्रारंभिक पड़ताल के बाद मजिस्ट्रेट ने मुकदमा सेशन जज को सुनवाई हेतु भेज दिया। 11 मई, 1906 को भारत सरकार ने बंगाल सरकार को लिखा कि खुदीराम की आयु छोटी है, मुकदमा वापस ले लिया जाए। खुदीराम बोस मिदनापुर में 'युगांतर' नाम की क्रांतिकारियों की एक गुप्त संस्था के माध्यम से क्रांतिकारी कार्यों से पहले ही से जुड़े हुए थे। उसी समय किंग्जफोर्ड को पदोन्नति देकर मुजफ्फरपुर में सत्र न्यायाधीश के पद पर भेजा गया था। यह वही मजिस्ट्रेट था जिसने 1905 में लॉर्ड कर्जन की बंगाल विभाजन की नीति का विरोध करने वाले अनेक भारतीयों को क्रूर दंड दिया था और भी कई अन्य मामलों में उसने क्रांतिकारियों को बहुत कष्ट दिया था। इसके परिणामस्वरूप ही 'युगांतर' समिति की एक गुप्त बैठक में किंग्जफोर्ड को मारने की

डॉ. रश्मि कुमारी

डॉ. रश्मि कुमारी ने 'उत्तर प्रदेश के स्वतंत्रता आंदोलन में शाहजहाँपुर के क्रांतिकारियों का योगदान' विषय पर शोध तथा '1857 के विद्रोह के दौरान उत्तर-पश्चिम प्रांत में मृत्युदंड प्राप्त विद्रोहियों का सामाजिक दस्तावेजीकरण, 1857-60' विषय पर पोस्ट-डॉक्टरेट फेलोशिप प्राप्त की है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से उनकी पुस्तक '1857 का महाविद्रोह व मौलवी अहमदउल्लाह शाह', 'काकोरी से पहले, काकोरी के बाद', 'जलियाँवाला बाग' के अलावा इनके कई शोध-पत्र प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : ईमेल— kumari.rashmi1979@yahoo.in

साजिश रची गई। इस कार्य हेतु खुदीराम तथा प्रफुल्लकुमार चाकी का चयन किया गया। मुजफ्फरपुर जिला जज किंग्सफोर्ड की हत्या करने हेतु हेमचन्द्र की सिफारिश पर खुदीराम बोस मुजफ्फरपुर भेजा गया। हेमचन्द्र दास ने बम बनाए। इस काम को अंजाम देने के लिए खुदीराम बोस को एक बम और पिस्तौल दी गई। प्रफुल्लकुमार को भी एक पिस्तौल दी गई। मुजफ्फरपुर आने पर इन दोनों ने सबसे पहले किंग्जफोर्ड के बँगले की निगरानी करनी शुरू की। उन्होंने उसकी बग्घी तथा घोड़े का रंग देख लिया था। खुदीराम बोस तो किंग्जफोर्ड को उसके कार्यालय में जाकर ठीक से देख भी आए थे।

30 अप्रैल, 1908 को ये दोनों नियोजित काम के लिए बाहर निकले और किंग्जफोर्ड के बँगले के बाहर घोड़ागाड़ी से उसके आने की राह देखने लगे। बँगले की निगरानी हेतु वहाँ मौजूद पुलिस के गुप्तचरों ने उन्हें हटाना भी चाहा, परंतु वे दोनों उन्हें योग्य उत्तर देकर वहीं रुके रहे। रात में साढ़े आठ बजे के आस-पास क्लब से किंग्जफोर्ड की बग्घी के समान दिखने वाली एक गाड़ी आती हुई देखकर खुदीराम गाड़ी के पीछे भागने लगे। रास्ते में बहुत ही अँधेरा था। गाड़ी के किंग्जफोर्ड के बँगले के सामने आते ही खुदीराम ने अँधेरे में ही आगे वाली बग्घी पर निशाना लगाकर जोर से बम फेंका। हिंदुस्तान में इस पहले बम विस्फोट की आवाज उस रात तीन मील तक सुनाई दी और कुछ दिनों बाद तो उसकी आवाज इंग्लैंड तथा यूरोप में भी सुनी गई जब वहाँ इस घटना की खबर ने तहलका मचा दिया। यूँ तो खुदीराम ने किंग्जफोर्ड की गाड़ी समझकर बम फेंका था, परंतु अचानक एक गाड़ी जिसमें मिस व मिसेज कैनेडी बैठे थे, सामने से गुजरी। इन्होंने किंग्सफोर्ड की गाड़ी समझकर बम फेंका जिससे दोनों मिस व मिसेज कैनेडी मारे गए। खुदीराम तथा प्रफुल्लकुमार दोनों ही रातों-रात नंगे पैर भाग निकले और 24 मील दूर स्थित बानी रेलवे स्टेशन पर जाकर विश्राम कर ही रहे थे कि खुदीराम बोस को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। 13 जून, 1908 को खुदीराम बोस को मृत्युदंड की सजा सुनाई गई जिसकी 13 जुलाई, 1908 को हाईकोर्ट ने पुष्टि कर दी। 11 अगस्त, 1908 को भगवद्गीता हाथ में लेकर खुदीराम धैर्य के साथ खुशी-खुशी फाँसी चढ़ गए। जिस समय खुदीराम बोस को फाँसी पर लटकाया गया, उस समय उनकी उम्र मात्र 18 वर्ष के आस-पास थी। खुदीराम बोस की शवयात्रा में लाखों लोग सम्मिलित हुए।

प्रफुल्ल चाकी ट्रेन में बैठकर जब समस्तीपुर से मोकामा घाट का रेलवे टिकट लेकर यात्रा कर रहे थे तो उसी रेल के डिब्बे में सबइंस्पेक्टर पुलिस नंदलाल बैनर्जी भी सफर कर रहा था। नंदलाल बैनर्जी को प्रफुल्ल चाकी पर संदेह हुआ। प्रफुल्ल चाकी ने उस समय

अपना नाम पुलिस वाले को दिनेशचन्द्र राय बताया था। 01 मई को जब गाड़ी मोकामा रेलवे स्टेशन पर पहुँची तो नंदलाल बैनर्जी गाड़ी से उतर गया। प्रफुल्ल चाकी ने भी वहाँ से निकल जाने का प्रयास किया। प्लेटफार्म पर रेलवे पुलिस के अन्य सिपाहियों को लेकर नंदलाल बैनर्जी सामने आ गया। मुकाबला होते ही प्रफुल्ल चाकी ने स्वयं को गोली मार ली और अपने संकल्प को पूरा किया कि वह पुलिस की गिरफ्त में नहीं आएगा। सबइंस्पेक्टर नंदलाल प्रफुल्ल चाकी को एकदम देखता ही रह गया और अंत में उसका सिर काटकर वह कलकत्ता ले गया। अधिकारियों ने सिर देखकर बताया कि इसका नाम दिनेशचन्द्र राय नहीं है। यह तो वास्तव में रंगपुरवाला प्रफुल्ल चाकी है और राजनारायण चाकी का पाँचवाँ पुत्र है।

इतिहास इन नवयुवकों का हमेशा ऋणी रहेगा।

वीर शहीद गुण्डाधुर

भारत की जनजातियाँ अनेक दुर्गम पर्वतमालाओं के बीच घने जंगलों में निवास करती आ रही हैं। इन जनजातियों की प्रारंभ से ही स्वतंत्रताप्रिय अवधारणा थी। ये अपने शांतिप्रिय वातावरण में किसी दूसरे का हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं करतीं, परंतु अंग्रेजों के अमानवीय कृत्यों से इनमें असंतोष फैलने लगा। फलस्वरूप इन जनजातियों ने अंग्रेजों से संघर्ष करना शुरू कर दिया। ये संघर्ष भारत की स्वाधीनता के संघर्ष बन गए, जिसमें आदिवासी जनजातियों ने अप्रतिम वीरता का परिचय दिया। ऐसे ही छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थित बस्तर में एक महान क्रांतिकारी गुण्डाधुर का जन्म हुआ। गुण्डाधुर वह क्रांतिकारी थे, जिन्होंने 1910 में बस्तर में स्वतंत्रता की मशाल जला दी और अंग्रेजों को इस कदर परेशान किया था कि कुछ समय के लिए अंग्रेजों को जान बचाकर गुफाओं में छिपना पड़ा था।

इंदु वर्मा

जन्म : 12 दिसंबर, 1997, बालौदाबाजार, छत्तीसगढ़।

शिक्षा : इलेक्ट्रिकल एंड इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग।

संप्रति : गवर्नमेंट पॉलीटेक्निक कॉलेज में अंशकालिक शिक्षक के रूप में कार्यरत।

'आजादी का अमृत महोत्सव' के अंतर्गत प्रधानमंत्री युवा मेंटरशिप प्रोग्राम में चयनित।

संपर्क : मोबाइल– 6260437253

ईमेल– induv2171@gmail.com

गुण्डाधुर का जन्म बस्तर स्थित छोटे से गाँव नेतानार में हुआ था। यह जगदलपुर से आठ मील की दूरी पर बसा धुर्वा जनजाति बाहुल्य वाला गाँव है। इस कारण लोग इन्हें 'धुरवा' कहकर पुकारा करते थे। गुण्डाधुर के प्रारंभिक जीवन के बारे में कोई विशेष जानकारी तो प्राप्त नहीं हुई है। इतना ज्ञात है कि उन्हें अक्षर ज्ञान न था, पर वे एक कुशल वक्ता थे।

गुलामी की जंजीरों में जकड़े देश के अन्य क्षेत्रों की तरह बस्तर भी अंग्रेजी दासता से मुक्त होना चाहता था जिसमें गुण्डाधुर जैसे महान क्रांतिकारी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुण्डाधुर ने ही भूमकाल आंदोलन की नींव रखी। इस भूमकाल विद्रोह में करीब 25 हजार आदिवासियों ने अपनी कुर्बानी दी थी।

सन् 1891 में बस्तर के राजा भैरव देव की मृत्यु होने के बाद 29 जुलाई, 1891 में उनके पुत्र राजकुमार रुद्रप्रताप देवराज गद्दी पर बैठे, परंतु उस समय वे केवल छह वर्ष के थे। नाबालिग होने के कारण प्रशासन की जिम्मेदारी अंग्रेजों ने अपने हाथ में ले ली। अंग्रेज प्रशासन ने सत्ता हाथ में लेते ही राजदरबार के शुभचिंतकों को स्थानीय प्रशासन से दूर कर दिया, जिनमें से एक लाल कलिन्दर सिंह भी थे। लाल रिश्ते में रुद्रप्रताप सिंह के चाचा थे। जब भैरवदेव का शासन था, तब लाल कलिन्दर सिंह बस्तर के दीवान थे, लेकिन अंग्रेजों ने उनका पद बैजनाथ पंडा को दे दिया। डायरेक्ट मैनेजमेंट का सिलसिला 1891 से 1908 तक चलता रहा। 1908 में रुद्रप्रताप देवराज पुनः बस्तर के शासक नियुक्त किए गए और अगले तीन वर्षों तक दीवान की सहायता से शासन करना तय हुआ। इस प्रकार 1910 तक शासन में स्थानीय लोगों का कोई हाथ न रहा।

रुद्रदेव अच्छे व्यवहार वाले व्यक्ति थे, लेकिन दीवान के षड्यंत्र के चलते वे बस्तर की प्रजा से दूर रहते, मेल-मिलाप नहीं करते, जिससे बस्तर की जनता के दुख-दर्द से अवगत न हो पाते थे। इस कारण लोगों के मन में उनके प्रति सम्मान का भाव न था। बस्तर में अंग्रेजों का आतंक बढ़ता जा रहा था। वे यहाँ के आदिवासियों से डरा-धमका कर

कम कीमत पर या मुफ्त में वस्तुएँ प्राप्त करने की कोशिश किया करते थे। इसी दौरान अंग्रेज अधिकारियों ने कुरीतियों के नाम पर रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप आरंभ कर दिया, जिससे लोगों के बीच अंग्रेजों के प्रति द्वेष पनपने लगा था। लाल कलिन्दर सिंह को पद से हटाना, अंग्रेजों का सत्ता सँभालना जैसे कार्यों ने माचिस की तीली के समान काम किया। लाल अंग्रेजों के प्रशासन से खुश नहीं थे। उन्होंने पद से हटते ही अंग्रेजों से बदला लेने की ठानी, लेकिन उन्हें अहसास था कि वे अकेले अंग्रेजों का कुछ बिगाड़ नहीं पाएँगे क्योंकि अंग्रेजों के पास बहुत बड़ी सेना है। तब उन्हें अपनी सेना बनाने का विचार आया, लेकिन ऐसा करने में भी वे स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहे थे। अब कलिन्दर सिंह, ऐसे व्यक्ति की तलाश करने लगे जो उनके नाम पर आदिवासियों को विद्रोह का संदेशा पहुँचा सके और उन्हें क्रांति के लिए तैयार कर सके।

उस समय लाल जगदलपुर में निवास किया करते थे। बस्तर के दीवान बैजनाथ पंडा ने लाल के प्रभाव को घटाने के उद्देश्य से उन्हें जगदलपुर में रहने से मना कर दिया। तब लाल 'तरोकी' नामक गाँव में रहने लगे। आदिवासियों के मुखिया तरोकी में जाकर मिला करते और योजनाएँ बनाया करते। एक दिन गुण्डाधुर भी मुखिया के साथ तरोकी जा पहुँचे। वह वहाँ हो रही महत्वपूर्ण सभाओं में शामिल रहे। गुण्डाधुर के मन में वहाँ हुई बातें घर कर गईं और उन्होंने नित्य तरोकी जाना प्रारंभ कर दिया। देखते-ही-देखते गुण्डाधुर, लाल के दाहिना हाथ बन गए। लाल ने गुण्डाधुर को अपना लंबा कोट और कटार पकड़ाकर आदिवासियों को संगठित करने का काम सौंप दिया।

गुण्डाधुर आम की शाखा, एक लाल मिर्च, एक तीर एक साथ बाँधकर गाँवों में घूमाया करते। आम की शाखा का अर्थ 'सभा की सूचना', लाल मिर्च 'महत्वपूर्ण मामलों पर विचार', और तीर 'लड़ाई का प्रतीक' माना जाता था। इतिहासकारों का मानना है कि इसी तरह मिट्टी (मातृभूमि प्रेम), हल्दी की गाँठ (निमंत्रण सूचक), भाला आदि का प्रयोग करते थे। गुण्डाधुर अपने संदेशों को इतनी तेजी से एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचा देते थे कि लोगों को लगता था कि उसे उड़ना आता है। गुण्डाधुर आदिवासियों में से ही होने के कारण उनके मनोमस्तिष्क में उठने वाले भय को तुरंत भाप लिया करते थे। वह तंत्र विद्या में भी निपुण थे इसलिए वे आदिवासियों के मन में बंदूक के भय को दूर करने में सफल रहे। आदिवासियों को उनकी ताकत पर विश्वास दिलाने के लिए वे उन्हें ताबीज दिया करते, ताबीजों की पोटली हमेशा अपने साथ रखते और लोगों से कहते कि ताबीज पहनने से आप शक्तिशाली बन जाएँगे। गुण्डाधुर अंतिम रूप से सूचना देने के लिए या जो उनकी बातों पर विश्वास नहीं करते, उन्हें कोट और तलवार दिखाकर लाल की योजनाओं से अवगत करते थे, क्योंकि आदिवासी लाल की कोट और कटार से भली-भाँति परिचित थे जिससे लोगों को लाल के विद्रोह से जुड़े होने का पता लगता था, क्योंकि लाल कभी प्रत्यक्ष रूप से लोगों के साथ नहीं आए।

गुण्डाधुर के नेतृत्व में विद्रोहियों ने 02 फरवरी को पूसपाल बाजार की लूट से क्रांति का शंखनाद किया। रुद्रदेव बस्तर में बढ़ते विद्रोह को देख भयभीत हो उठे, और 07 फरवरी को तार के माध्यम से अंग्रेजों को सूचना भेज दी। यह संघर्ष 03 मई, 1910 तक चलता रहा। इस संघर्ष को दबाने के लिए अंग्रेज अधिकारियों द्वारा बहुत प्रयास किया गया। सेंट्रल प्रोविंसेस के 200, मद्रास प्रेसीडेंसी से 150, 22-पंजाबी बटालियन के 170 सैनिक बस्तर बुलाए गए जिनके पास मशीनगनें थीं। यह देख ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अंग्रेज गुण्डाधुर के पराक्रम से पहले ही भली-भाँति परिचित थे और उनकी वीरता से

डरते थे। गुण्डाधुर और उनके साथियों ने सड़कें खराब कर दीं, नदियों में बने पुल तोड़ दिए, गाँव, बंगले जला दिए। जैसे-तैसे अंग्रेज जगदलपुर पहुँचे तो चारों ओर से क्रांतिकारियों ने घेर लिया। अंग्रेजों ने

दूर रहने का आदेश दिया, लोग नहीं माने और आगे बढ़े, अंग्रेजों द्वारा क्रांतिकारियों को डराने के उद्देश्य से उन पर गोलियाँ दाग दीं। लड़ते समय गुण्डाधुर के सिर में गहरी चोट लग गई, खून टपक रहा था, फिर भी गुण्डाधुर का आत्मबल न डगमगाया, वे लड़ाई करते रहे। लड़ाई के

> **इतिहासकारों का मानना है कि गुण्डाधुर क्रांतिकारियों को माटी की कसम खिलाकर युद्ध के लिए तैयार करते थे। जगदलपुर में लाल व अन्य प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी ने विद्रोहियों के मन में निराशा का वातावरण निर्मित कर दिया, लेकिन नेतनार का गुण्डाधुर घायल होने के बावजूद भी लाल को जेल से निकलवाने के लिए योजनाएँ बनाने लग गया। गुण्डाधुर ने अलनार शिविर पर अचानक आक्रमण कर सफलता प्राप्त करने की योजना बनाई, लेकिन यह योजना सफल हो न सकी, क्योंकि गुप्तचरों ने पहले ही अंग्रेजों को इसकी जानकारी दे दी थी।**

उपरांत विद्रोहियों और अंग्रेजों के मध्य वार्तालाप का दौर हुआ। आदिवासी मान गए, लेकिन गुण्डाधुर न माने।

16 फरवरी को कर्नल गेयर नामक अंग्रेज अधिकारी और क्रांतिकारियों के बीच बातचीत हुई, जिसमें क्रांतिकारियों ने कर्नल को माटी की कसम खाने को कहा। कर्नल द्वारा मिट्टी उठाकर कसम खा लेने पर उन्हें कुशलतापूर्वक जगदलपुर जाने के लिए रास्ता प्रदान कर दिया गया। इससे पता चलता है कि गुण्डाधुर माटी से कितना प्रेम करते थे। इतिहासकारों का मानना है कि गुण्डाधुर क्रांतिकारियों को माटी की कसम खिलाकर युद्ध के लिए तैयार करते थे। जगदलपुर में लाल व अन्य प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी ने विद्रोहियों के मन में निराशा का वातावरण निर्मित कर दिया, लेकिन नेतनार का गुण्डाधुर घायल होने के बावजूद भी लाल को जेल से निकलवाने के लिए योजनाएँ बनाने लगे। गुण्डाधुर ने अलनार शिविर पर अचानक आक्रमण कर सफलता प्राप्त करने की योजना बनाई, लेकिन यह योजना सफल हो न सकी, क्योंकि गुप्तचरों ने पहले ही अंग्रेजों को इसकी जानकारी दे दी थी। अलनार में रात्रि में जो खून-खराबा हुआ, उससे कहीं अधिक दिन के संघर्ष में हुआ होता। इस क्रांति के उपरांत अंग्रेजों ने लाल कलिन्दर सिंह को जगदलपुर पहुँचने पर नजरबंद कर दिया। क्रांतिकारियों ने गुण्डाधुर के नेतृत्व में पुनः योजना बनाई कि सुबह जगदलपुर पहुँच सशस्त्र विद्रोह कर अपनी माँग रखेंगे, न मानने पर एक दल भारी प्रदर्शन करेगा, जिसे रोकने सारी पुलिस आ जाएगी, उधर दूसरा दल अंग्रेजों के बंगले में जाकर लाल को छुड़वा लेगा। सोए हुए आदिवासियों को अंग्रेजी सैनिकों की टुकड़ी ने घेर लिया।

26 मार्च की रात्रि दो बजे अंग्रेजों ने अलनार में सोते हुए दो आदिवासी क्रांतिकारियों पर गोलियों की बौछार कर दी। अंग्रेजों की आहट सुन क्रांतिवीर तीर-कमान लेकर लड़ने लगे, एक ओर से बंदूकें गरज रही थीं और दूसरी ओर से तीर बरस रहे थे। तीर, गोलियों का सामना कितनी देर कर सकता था, लेकिन गुण्डाधुर ने क्रांतिकारियों के उत्साह को कम न होने दिया, लड़ते रहे। आधुनिक हथियारों के सामने, पौराणिक हथियार टिक न पाए, अंत में 21 विद्रोही मारे गए कुछ पकड़े गए, लेकिन गुण्डाधुर पकड़े न जा सके। उन्हें अंग्रेजों से इतनी घृणा थी कि वे कोई समझौता करना भी उचित न समझते थे। गुण्डाधुर कोई राजा तो न थे, लेकिन आदिवासियों से पूछने पर वे उन्हें ही अपना राजा बनाना चाहते थे।

जिस तरह सन् 1857 की क्रांति भारत में व्याप्त हुई थी, और अंग्रेजों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया था, वैसा ही दृश्य सन् 1910 में बस्तर में दृष्टिगोचर हो रहा था, लेकिन शीशा का पत्थर से टकराना हमेशा शीशे के लिए नुकसानदायक होता है, वैसा ही हुआ। आदिवासियों के विद्रोह को धन, बल, कूटनीतियों द्वारा दबा दिया गया और क्रांतिकारियों को पकड़कर बीच चौक पर इमली के पेड़ पर फाँसी के फंदे पर लटका दिया गया। उन फाँसी में लटके क्रांतिकारियों को चील-कौवों के लिए वैसे ही छोड़ दिया गया, लेकिन शहीद गुण्डाधुर को अंग्रेज पकड़ने में असमर्थ रहे। अंग्रेजों द्वारा ढूँढ़ने की अथाह कोशिश की गई, लेकिन गुण्डाधुर के बारे में कोई जानकारी प्राप्त न कर पाए। 1910 की क्रांति के बाद गुण्डाधुर किसी क्रांति में दिखाई न दिए।

अंग्रेजों के नाक में दम करने वाले गुण्डाधुर आज भी बस्तर के आदिवासियों के बीच जिंदा हैं। भूमकाल की गाथाएँ आज भी बस्तर के लोकगीतों में गाई जाती हैं।

दूसरा जलियाँवाला बाग बना रायबरेली का मुंशीगंज

भारत के लोकतंत्र की नींव जनआंदोलन से पड़ी है। 19वीं और 20वीं सदी में जनआंदोलनों यथा सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन, आजादी और अपनी माँगों को लेकर आंदोलन, किसान आंदोलन व्यापक रूप से चलाए गए। भारत के स्वाधीनता संग्राम में आदिवासियों, जनजातियों और किसान आंदोलनों का विशेष योगदान रहा जिन्होंने न केवल जनजागरण में व्यापक भूमिका निभाई, अपितु ब्रिटिश साम्राज्य को किसान विरोधी नीतियाँ बदलने के लिए बाध्य कर दिया। देश में निलहे किसानों द्वारा नील विद्रोह, लगान विरोध में पाबना विद्रोह, अनाज का एक-तिहाई भाग अंग्रेजों को देने पर तेभागा आंदोलन, तिनकठिया प्रणाली के विरोध में चंपारण सत्याग्रह और लगान वृद्धि के विरोध में बारदोली जैसे प्रमुख आंदोलन हुए। वस्तुतः किसानों के विद्रोह की संगठित शुरुआत सन् 1859 से हुई। अंग्रेजों की मुनाफाखोरी पर आधारित नीतियों से किसान आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। इनमें से तिनकठिया प्रणाली, अतिरिक्त लगान जैसी शोषणकारी नीतियों से किसानों को उनके द्वारा उगाया जा रहा अनाज भी नसीब नहीं होता था। वे भुखमरी के शिकार बनने लगे। इस सब की परिणति रहे किसान आंदोलन।

विजय कुमार 'शाश्वत'

जन्म : 01 अक्तूबर, 1983, कानपुर देहात, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : पत्रकारिता में स्नातकोत्तर।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय सहायक के रूप में कार्यरत।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8010270501

ईमेल– kvijay467@gmail.com

सई नदी का तट व शहीद स्थल

शायद ही कोई ऐसा प्रांत रहा होगा जहाँ किसान आंदोलन न हुए हों। ऐसे में उत्तर प्रदेश भला कैसे पीछे रहता। यहाँ भी जमकर विरोध और विद्रोह हुए, लेकिन किसानों ने हिंसात्मक रुख कभी नहीं अपनाया। उलटे उन पर हिंसा की गई। उन्हें यातनाएँ भी सहन करनी पड़ीं। ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों से मुक्ति के लिए ऐसा ही एक काला किस्सा उत्तर प्रदेश किसान आंदोलन के इतिहास में दर्ज है जो अंग्रेजों के सितम के काले अध्याय के विरुद्ध किसानों के बलिदान की गाथा है।

07 जनवरी, 1921 को जब उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में स्थित रायबरेली के मुंशीगंज कस्बे में किसान शांतिपूर्ण ढंग से विरोध के लिए सई नदी के तट पर इकट्ठा हुए थे, उसी समय उन पर भीषण गोलीबारी की गई। इस किसान आंदोलन की शुरुआत जलियाँवाला बाग हत्याकांड यानी 13 अप्रैल, 1919 के तत्काल बाद मानी जाती है। यह 1920 के अंत तथा 1921 के प्रारंभ में चरम पर पहुँच गया। फलतः अवध के तालुकेदारों, जमींदारों तथा राजाओं के अत्याचारों से पीड़ित किसान विद्रोह कर बैठे। स्वाधीनता संग्राम के सबसे क्रूरतम अध्याय 'जलियाँवाला बाग' में शांतिपूर्ण ढंग से बैठक कर रहे लोगों ने अपने प्राणों की आहुति देकर पूरे देश को झकझोर दिया, लेकिन अवध के किसानों की शहादत को भी कमतर नहीं माना जा सकता।

इन किसानों के पास क्रांति के प्रतीक तो न थे, लेकिन इनके पास एक धार्मिक नारा था–"सीताराम!" कहा जाता है कि इस नारे की ध्वनि कानों में पड़ते ही जो किसान जहाँ काम करता था, वहीं अपना काम बंद कर देता था। यह ध्वनि एक किसान से दूसरे किसान तक विद्युत-वेग से पहुँच जाती थी।

अवध किसान सभा की स्थापना

अंग्रेजी शासन के बेतरतीब करों से किसान तंग आ चुके थे। इससे मुक्ति दिलाने के लिए पं. मदन मोहन मालवीय की प्रेरणा से गौरीशंकर मिश्र व इंद्रनारायण द्विवेदी ने फरवरी 1918 में 'किसान सभा' का गठन

किया। जून 1919 तक इसकी लगभग 450 से ज्यादा शाखाएँ अवध प्रांत में बन गईं। सन् 1920 में महाराष्ट्र के बाबा रामचंद्र का आगमन किसान सभा में हुआ। उन्होंने अवध क्षेत्र को अपनी कर्मभूमि बना लिया, लेकिन बाबा रामचंद्र ने किसान सभा के नेताओं से मतभेद होने के कारण पं. जवाहरलाल नेहरू व अन्य लोगों के साथ मिलकर अक्तूबर 1920 में 'अवध किसान सभा' की स्थापना की।

इलाहाबाद में नेहरू जी से भेंट के बाद जैसे ही किसान वापस लौटे तो अंग्रेजों द्वारा उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, जिससे अन्य किसान उत्तेजित हो गए और उन्होंने जिला कारागार पर हमला बोल दिया। इसमें कई बंदियों को जेल से छुड़ा लिया गया। इसके बाद उन्होंने रायबरेली की ओर कदम बढ़ाए। 04 जनवरी को रुस्तमपुर बाजार में किसानों की एक सभा होने वाली थी, लेकिन दुर्भाग्य से वह सभा संपन्न नहीं हो पाई और किसानों द्वारा बाजार लूटने की अफवाह फैला दी गई। इसी दौरान डीह बाजार, नसीहाबाद बाजार जैसे कई बाजारों को लूटने की अफवाह फैलाई गई।

मुंशीगंज गोली कांड की रूपरेखा

बाबा जानकीदास, पं. अमोल शर्मा, मुंशी कालिकाप्रसाद आदि किसान नेताओं के नेतृत्व में तीन हजार से अधिक किसानों के हुजूम ने चंदनिहा के तालुकेदार त्रिभुवन सिंह की कोठी पर हमला बोल दिया। किसानों ने नारेबाजी शुरू कर दी। उसी समय जिला मजिस्ट्रेट ए.जी. शेरिफ तालुकेदार की शिकायत पर पुलिस फोर्स लेकर मौके पर पहुँच गया। उसने तीनों नेताओं को अपनी गाड़ी में बैठा लिया। इसी समय यह अफवाह फैल गई कि रायबरेली में तीनों नेताओं की हत्या कर दी गई है।

इससे पहले इसी क्षेत्र के फुरसतगंज में भी एक घटना घट गई। फुरसतगंज में एक गोलीकांड में तीन किसानों की मौत हो गई थी। इसी घटना के फलस्वरूप 07 जनवरी को मुंशीगंज का ऐतिहासिक गोलीकांड हुआ।

रायबरेली के मुंशीगंज गोलीकांड की परिस्थितियाँ लगभग जलियाँवाला बाग जैसी थीं। हालाँकि जिले के किसान नेताओं ने स्थिति के बारे में पं. जवाहरलाल नेहरू को एक दिन पूर्व ही अवगत करा दिया था। ब्रिटिश अधिकारियों ने रातोंरात सेना बुला ली। अंग्रेजों ने पुल पर बैलगाड़ियाँ इकट्ठी करके रास्ता रोक दिया था। पुल के एक ओर सशस्त्र सेना खड़ी थी और दूसरी ओर किसानों का जनसैलाब। वहीं एक ओर रेलवे लाइन की ऊँचाई दीवार का काम कर रही थी। यहाँ किसानों के बीच बाबू किस्मत राय भाषण दे रहे थे। इस कांड में खुरेहटी के तालुकेदार सरदार वीरपाल सिंह की अहम भूमिका रही। उसने ही जिलाधिकारी ए.जी. शेरिफ से शिकायत की थी।

शेरिफ के अनुसार, "उस समय वहाँ सात हजार से दस हजार तक की भीड़ थी। स्त्रियों को छोड़ सबके हाथों में लाठियाँ थीं। यह भीड़ बड़ी मुश्किल से पीछे हट रही थी। भीड़ को दो सौ गज पीछे हटाने में लगभग एक घंटा लगा। इसी बीच भीड़ छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गई। तभी किसी ने गोली चला दी।" इसके बाद तो किसानों पर अंधाधुंध गोलीबारी हुई। सई नदी की रेत लहूलुहान हो गई। नदी का पानी लाल हो गया। रातोंरात लाशें फौजी ट्रकों में भरकर डलमऊ भेज दी गईं। रात में इधर-उधर खोजने पर जो लाशें मिलीं, उन्हें रेत में गाड़ दिया गया। कुछ घायल किसानों को अस्पताल भेज दिया गया। एक आँकड़े के अनुसार इस गोलीकांड में लगभग 700 किसान शहीद हुए थे, जबकि लगभग 1500 किसान घायल हुए थे।

हालाँकि गोलीकांड के समय पं. नेहरू नदी के दूसरे ओर पहुँच चुके थे। लाख कोशिश के बाद भी वे किसानों के बीच जाने में असमर्थ रहे। बाद में पं. नेहरू ने 13 जनवरी, 1921 को 'दैनिक इंडिपेंडेंट' के अंक में इस घटना पर एक लेख भी लिखा। अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने मुंशीगंज गोलीकांड का उल्लेख किया है।

मुंशीगंज गोलीकांड, जिसमें निहत्थे किसानों पर गोलियाँ बरसाई गईं, रायबरेली के इतिहास में काला अध्याय साबित हुआ। इस काले अध्याय के 102 वर्ष बीत चुके हैं। शहीद हुए किसानों की याद में सई नदी के तट पर प्रतिवर्ष मेला आयोजित किया जाता है।

विशेष बात यह है कि वर्ष में एक बार शहीद स्थल पर यहाँ मेले का भव्य आयोजन होता है। इसके अलावा यहाँ भारत माता मंदिर का निर्माण भी किया गया है, लेकिन यह अभी भी उपेक्षित ही है। इतिहासकारों ने न तो इसे वह मान दिया, जिसका यह हकदार था और न ही यहाँ के प्रशासन और सरकारों ने। कहने के लिए यह स्थान शहीद स्थल है, यहाँ न तो कोई रख-रखाव है और न ही कोई सुरक्षा। यहाँ तक कि एक मात्र फोटो के अलावा रायबरेली जिले की वेबसाइट में भी इस ऐतिहासिक स्थल का कोई जिक्र नहीं है।

'रेत समाधि' को बुकर पुरस्कार

सन् 1987 में 'हंस पत्रिका' में प्रकाशित 'बेलपत्र' कहानी से गीतांजलि श्री ने अपने लेखन की शुरुआत की। वे हिंदी साहित्य की दुनिया में लगभग तीन दशकों से सक्रिय हैं। 1990 के दशक में उनके प्रथम दो उपन्यास 'माई' और 'हमारा शहर उस बरस' प्रकाशित हो चुके हैं। उसके बाद 'तिरोहित', 'खाली जगह' और 'रेत समाधि' उपन्यास प्रकाशित हुए। कहानी संग्रह और थियेटर के लिए भी उन्होंने लेखन किया है। गीतांजलि श्री द्वारा लिखित उपन्यास 'रेत समाधि' इंटरनेशनल बुकर प्राइज प्राप्त करने वाली हिंदी भाषा की पहली पुस्तक है।

विदित हो कि 1989 में शुरू हुए मैन बुकर पुरस्कार के नाम से प्रख्यात यह साहित्यिक पुरस्कार प्रत्येक वर्ष अंग्रेजी में लिखे गए और यूनाइटेड किंगडम या आयरलैंड में प्रकाशित होने वाले सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के लिए दिया जाता था। बाद में इसे राष्ट्रमंडल देशों के लिए भी बढ़ाया गया। अभी तक यह पुरस्कार भारत में वी.एस. नायपाल, अरविंद अडिगा, अरुंधति राय, सलमान रुश्दी और किरण देसाई को प्राप्त हो चुका है, लेकिन हिंदी भाषा में यह पहला उपन्यास है जो बुकर पुरस्कार से पुरस्कृत हुआ है। हिंदी में 'रेत समाधि' उपन्यास का प्रकाशन 'राजकमल प्रकाशन' ने किया है और अंग्रेजी में इस उपन्यास का अनुवाद डेज़ी रॉकवेल ने 'टॉम्ब ऑफ सैंड' नाम से किया है और इसका प्रकाशन 'टिल्टेड एक्सिस' ने किया है। रोचक तथ्य यह है कि डेज़ी मूल रूप से अमेरिका की रहने वाली हैं। डेज़ी हिंदी साहित्य समेत कई भाषाओं और उनके साहित्य का ज्ञान रखती हैं और ऐसे साहित्य का अनुवाद भी कर चुकी हैं। डेज़ी ने अपना शोध कार्य भी उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास 'गिरती दीवारें' पर किया। उन्होंने उपेन्द्रनाथ अश्क, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती जैसे हिंदी के चोटी के साहित्यकारों की रचनाओं का भी अनुवाद किया है।

यह उपन्यास पाठक को उनके पुराने दिनों में लेकर जाता है, जहाँ जीवन बहुत स्थिर था, जहाँ गाँव के घर में बूढ़ी अम्मा कहानी कहती हैं। इस उपन्यास को बँधे-बँधाए शिल्प के लीक से हटकर देखने की जरूरत है क्योंकि यह उपन्यास एक बैठकी में पढ़ा जाने उपन्यास नहीं है। कहानी कम पात्रों की है और यदि बाकी पात्र हैं भी तो महज संकेत के लिए, जैसे—शीला, शकीला, रोजी, केके और अली अनवर। घटनाएँ केवल संदर्भ के तौर पर हैं तो संवाद एकल है। रोजमर्रा की बहुत छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से उपन्यासकार ने पाठकों की नब्ज पकड़ने की कोशिश की है।

यह उपन्यास भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के संयुक्त परिवारों की कहानी कहता है। उपन्यास को पढ़ते समय एक सजग पाठक को प्रकाश भी दिखेगा और अँधेरा भी; सुकून भी दिखेगा, हाहाकर भी; सुख भी, दुख भी; बेचैनी भी करेगा और अंत में आपके चित्त को शांत करके संसार में विचरण हेतु छोड़ देगा जहाँ आप अपने मन के अनुसार गोता लगाते रहिए।

गीतांजलि श्री ने अपनी रचनाओं पर निर्मल वर्मा और कृष्णा सोबती का प्रभाव स्वीकार किया है। गीतांजलि श्री के उपन्यास में कई ऐसे अनुच्छेद हैं जिसे पाठक पढ़ने के बाद कुछ देर रुक जाएगा। उस अनुच्छेद को फिर पढ़ेगा और फिर ज़ोर-ज़ोर से बोल कर पढ़ेगा। हिंदी साहित्य की कम रचनाओं में यह बात देखते को मिलेगी। 'राग दरबारी', 'तीसरी कसम', 'मैला आंचल', 'हम हशमत', 'आधा गाँव', 'कितने पाकिस्तान' आदि रचनाओं के कुछ-कुछ पैराग्राफों में यह स्थिति उत्पन्न होती है, बाकी 'रेत समाधि' के किसी-किसी अनुच्छेद में। एक उदाहरण देखा जा सकता है—'दिलदारों को प्यार पसंद है, कठमुल्लों को हथियार, तितलियों को छड़ी पसंद है, बलछल को सरकार, हमको-तुमको बर्फ़ी लड्डू, अख़बारों को झार।' अतः आप देखेंगे कि उनके पन्ने क्राइम से सराबोर हैं और दुकानें ज़ुल्मी रंगों से ग्राहकखोर हैं।

गीतांजलि श्री के पाँचों उपन्यासों में भाषा बहुत सरल और विनम्र है। 'रेत समाधि' में दो मुल्कों की बात हो या 'हमारा शहर उस बरस', सांप्रदायिकता व समाज तोड़ने वालों को आईना दिखाने की बात होती है। उसमें भी कहीं कोई कठोर भाषा का उपयोग नहीं है। शांत-शीतल जल के प्रवाह वाली भाषा प्रत्येक रचनाओं में दिखाई देती है।

कथा साहित्य की दुनिया में ख्यातिलब्ध नाम गीतांजलि श्री का था, फिर भी लोग उनकी रचनाओं से अनभिज्ञ थे। यह पुरस्कार ठहरकर लिखने वालों, साहित्यकारों को बेस्ट सेलर की होड़ से कहीं दूर रहने वाली रचनाओं के प्रकाशकों, संपादकों और साहित्य को अपना रोज़ी-रोटी का ज़रिया बनाने वाले नवोदित लेखकों को सिंचित करने का कार्य करेगा। डेज़ी रॉकवेल द्वारा अनूदित यह उपन्यास भारत तथा अन्य देशों में प्रकाशित साहित्य को नया आयाम दे सकता है।

आशीष कुमार पाण्डेय

जन्म : 14 मई, 1996 बलिया, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : बी.ए. (ऑनर्स) हिंदी, एम.ए. हिंदी।

संप्रति : शोधार्थी, हिंदी सोशल मीडिया, दिल्ली विश्वविद्यालय।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8285339305

ईमेल– ashishkumar94pandey@gmail.com

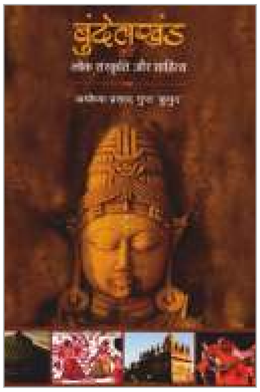

बुंदेलखंड
की लोकसंस्कृति और साहित्य

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 190

मूल्य : रु. 265/-

बुंदेलखंड को 'भारतवर्ष का हृदय स्थल' कहा जाता है। देश की स्वाधीनता के पश्चात बुंदेलखंड प्रांत बन गया था। इसमें उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के अंतर्गत 13 संपूर्ण तथा 15 जिलों के आंशिक भाग आते हैं। इसी बुंदेलखंड को केंद्र में रखकर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' की नवीनतम पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है—'बुंदेलखंड की लोकसंस्कृति और साहित्य।' इसमें कुल 12 शीर्षकों के अंतर्गत बुंदेलखंड की लोकसंस्कृति और साहित्य की शोधपरक विवेचना की गई है।

अनेक पुस्तकों के लेखक अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' की गिनती साहित्य, इतिहास तथा संस्कृति के विद्वान के रूप में की जाती है। अनेक प्रतिष्ठित सम्मान से अलंकृत इस लेखक के कृतित्व को सम्मानित करते हुए माधवराव सप्रे समाचार-पत्र संग्रहालय, भोपाल ने 'अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' आंचलिक अध्ययन केंद्र' स्थापित किया है।

उत्तर प्रदेश द्वारा बुंदेलखंड विकास निधि के प्रयोजन से सात जिले झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बाँदा तथा चित्रकूट सम्मिलित किए गए हैं। मध्य प्रदेश शासन ने बुंदेलखंड विकास प्राधिकरण के लिए पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया, सागर तथा दमोह को बुंदेलखंड माना है। प्राचीन काल में यह भू-भाग तुंगारण्य के अंतर्गत आता था। इस वन प्रांत में ऋषियों के आश्रम थे, जिनमें पराशर, वेदव्यास, कर्दम, च्यवन, जमदग्नि आदि मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

भारतीय समाज की जीवन-शैली भले ही पूरे देश में कमोबेश एक जैसी है, किंतु उसमें आंचलिकता और लोकत्व की झलक उसे विशिष्टता प्रदान करती है। यह विशिष्टता ही उस अंचल की लोकसंस्कृति कहलाती है।

किसी अंचल के समग्र चैतन्य समाज में परंपराओं से पोषित तथा मौखिक रूप से संचित ज्ञानराशि और अनुकरण से सीखी जाने वाली कला से जो अध्ययन की सामग्री प्राप्त होती है, उसे 'लोकसाहित्य' कहा जाता है।

सामाजिक एकरूपता में यहाँ के सभी वर्ग अन्योन्याश्रित हैं। शौर्य और सदाचार की पूजा यहाँ के समाज का विशेष गुण है। वीरता और जनसेवा केवल बखानी नहीं जाती है, उसे देवत्व की प्रतिष्ठा दी जाती है। इसका प्रमाण यहाँ के लोक देवताओं में मिलता है। हरदौल, कारसदेव आदि वे व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने 'मानव' होकर भी 'देवत्व' की गरिमा प्राप्त की है।

बुंदेलखंड में सूर्य पूजा का विधान, पंचदेवों की पूजा का विधान है। इनमें सूर्य के साथ विष्णु, शिव, गणेश तथा शक्ति की पूजा होती है।

बुंदेलखंड को 'उत्सव की भूमि' कहा गया है। यहाँ प्रतिदिन कोई-न-कोई तीज-त्योहार होता है। कुछ करने या छोड़ने का संकल्प 'व्रत' कहलाता है। व्रत-नियम, धर्म सभी संकल्प प्रसूत हैं। जब यह संकल्प एकाकी होता है, तब 'व्रत' कहलाता है, किंतु जब वह सामूहिक या जातिगत स्तर पर होता है, तो उस समय त्योहार बन जाता है। त्योहार में उत्सवमयता होती है। पर्व बड़ी संख्या में एक विशेष तिथि में मनाया जाता है, जैसे—होली, दीपावली।

तीज-त्योहार किसी भी समाज के संस्कृति के संवाहक होते हैं। इनमें पूजा-पद्धति, लोकांकन परंपरा, आचार-विधान, लोक-गायन, कथा, खान-पान, वेश-भूषा मिलकर एक विशिष्ट सांस्कृतिक परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं।

इस पुस्तक में बुंदेलखंड के 'उत्सव और मेले' पर भी प्रकाश डाला गया है। मसलन, 'वैष्णव मेले', 'ओरछा की रामनवमी का मेला', 'ओरछा का श्रीराम विवाह मेला', 'चरखारी का श्री गोवर्द्धन नाथ जी का मेला', 'भरुआ सुमेरपुर का नाग-नाथन मेला', 'मौदहा का कंस मेला', 'मैहर की शारदा देवी मेला', 'अक्षरा देवी तथा रक्तदंता देवी का मेला', 'शैव संप्रदाय के मेले', 'आदिवासियों के मेले', 'मुस्लिम संप्रदाय के मेले', 'ईसाई पर्व' आदि।

हमारे जीवन में रीति-रिवाज तथा लोक विश्वास का भी बड़ा महत्व है। मसलन, 'मुंडन', 'जनेऊ', 'कंछेदना', 'विवाह', 'विदाई' संबंधी रीति-रिवाज आदि-आदि। हर पंथ के अपने-अपने रीति-रिवाज होते हैं।

बुंदेलखंड के निवासी भी शकुन, अपशकुन, टोटका पर विश्वास करते हैं। मसलन हिंदू लोग शनिवार को तेल, चमड़ा तथा लोहा नहीं खरीदते। झाड़ू उलटी नहीं रखते हैं। ऋतुकाल में महिलाओं को भी चार दिन तक कुछ खास कामों को न करने की मनाही है।

बुंदेली स्वाद की बात करें तो वहाँ के निवासी कालौनी, समूंदी, चावली की बरी (बड़ी), सत्तू, भुर्रा आदि बड़े चाव से खाते हैं।

'वस्त्र और आभूषण' शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने महिलाओं, बालकों तथा पुरुषों के अनेक आभूषणों के नाम का उल्लेख किया है। यह सब पढ़कर आश्चर्य होता है कि बुंदेलखंड के निवासी इतने तरह के आभूषण धारण करते हैं।

बुंदेलखंड में भी लोक साहित्य की वाचिक परंपराएँ रही हैं। मसलन लोकगीत, पूजागीत, देवीगीत, संस्कार गीत, ऋतुगीत आदि। लेखक ने इस पुस्तक में परंपरागत अनेक गीत उद्धरण के रूप में प्रस्तुत किए हैं।

लोककथाएँ, जनश्रुतियाँ, प्रदर्शनकारी कलाएँ, दृश्यकलाएँ शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के सामने बुंदेलखंड की जीवन-शैली, लोकसंस्कृति और साहित्य को चित्रपट की तरह प्रस्तुत किया गया है। समग्रता में यह पुस्तक बुंदेलखंड का दर्पण है।

दीवार के पार दुनिया अपार

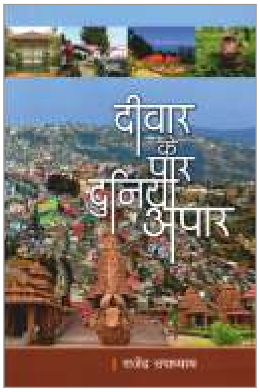

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **राजेन्द्र उपाध्याय**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 205/-

नाना के मुख से सुनी हुई फौजी जीवन की कहानियाँ, शिकार के अद्‌भुत वृत्तांत, देश के कई प्रदेशों के रोचक वर्णन, अजंता-एलोरा की किंवदंतियाँ एवं नदियों, झरनों के वर्णन तथा दर्जा तीन की उर्दू किताब में पढ़ा हुआ ख्वाजा मीर दर्द का शेर—

सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल ज़िंदगानी फिर कहाँ,
ज़िंदगी गर कुछ रही तो ये जवानी फिर कहाँ।

की उत्कंठा ने केदारनाथ पांडेय (राहुल सांकृत्यायन) के मन में बहुत छोटी-सी उम्र में ही देश-दुनिया को देखने की ललक पैदा कर दी और वे घर से निकल पड़े, जो आगे चलकर हिंदी साहित्य के प्रवर्तक कहलाए। जाने-माने बहुभाषाविद् राहुल सांकृत्यायन 20वीं सदी की शुरुआत में यात्रा-वृत्तांत के प्रतीक पुरुष बन गए।

लेखक राजेन्द्र उपाध्याय ने अपनी इस पुस्तक की भूमिका में स्वीकार किया है कि अब कोलंबस की तरह यात्रा नहीं रह गई है। अब तो सब-कुछ आरक्षित और निर्धारित है। जाहिर है, ऐसी यात्राओं में वैसा रोमांच, खतरा और आनंद की अनुभूति तो नहीं होती, पर जो लोग एक सीमा में जीवनभर बँधकर रह जाते हैं, उनके बनिस्बत अपने देश या विदेश में आरक्षित एवं निर्धारित यात्रा पर घर से निकल पड़ना भी बँधी-बँधाई दुनिया से अलग की दुनिया से रू-ब-रू कराती है। यात्रा वृत्तांत लिखने वाले लेखक के लिए वह जगह उन्हीं तक सीमित नहीं रहती। उसके पाठक लेखक की आँखों से देखी गई उस जगह का कमोबेश आनंद उठा लेते हैं।

'बरसों बाद उज्जैन में' शीर्षक लेख से पता चलता है कि लेखक इससे पूर्व भी उज्जैन की यात्रा कर चुका है। पौराणिक कथाओं के अनुसार मोक्षदायिनी शिप्रा के तट पर स्थित उज्जैन (अवंतिका) प्राचीन काल से ही धर्म, दर्शन, संस्कृति, विद्या एवं आस्था का केंद्र रहा है। 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक महाकालेश्वर का स्थान यहीं है। पर इस सबसे दूर विशेष रूप से यहाँ मंचित नाटकों का उल्लेख किया गया है, मसलन बुल्लेशाह, चोर पुराण, कर्णभारम, हास्य-चूणामणि आदि। कवि शमशेर, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, जगदीश चतुर्वेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के नाम की भी किसी-न-किसी संदर्भ से जोड़कर चर्चा की है। लेखक के शब्दों में कहें तो नेहरूजी, राजेन्द्र प्रसाद आदि कवियों, विद्वानों का सम्मान करते थे। चंबल कक्ष के विश्रामगृह में सभी कमरे के नामकरण नदियों के नाम पर हैं।

'दक्षिण में हिंदी' शीर्षक लेख में 'बेंगलुरू' की यात्रा में वहाँ की सच्चाई को बेबाकी से उजागर किया गया है। कोठारी आयोग के अनुसार अंग्रेजी अधिकांश भारतीय जनता के लिए विनिमय की भाषा नहीं बन सकती है। यह भाषा कालांतर में 'हिंदी ही होगी।' इसलिए इसे भारत के सभी भागों में फैलाने के लिए कार्य किया जाना चाहिए।

लेखक के अनुसार बेंगलुरू (कर्नाटक) में मातृभाषा के बाद अंग्रेजी का स्थान है। साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष यू.आर. अनंतमूर्ति के शब्दों में "हम हिंदी क्यों सीखें? आप कन्नड़ क्यों नहीं सीखते?"

पूरे देश में घूमने के लिए यहाँ भी सभी भाषाओं को सीखना कठिन है। इसलिए पूरे देश में एक-दूसरे से संपर्क करने के लिए हिंदी जानना जरूरी है, पर दक्षिण भारत में 1966 में हिंदी के विरोध में जो आंदोलन हुआ था, उसकी जितनी भी भर्त्सना की जाए, कम है। लेखक का मानना है कि बेंगलुरू जैसी जगह में भाषा के मामले में ऐसा लगता था मानो हम दूसरे देश में हैं। वहाँ की स्थिति देखकर ऐसा लगा कि हिंदी अपने देश में ही फटेहाल घूम रही है। यद्यपि 1918 में गांधीजी ने 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' में अपने पुत्र देवदास को हिंदी प्रचार के लिए भेजा था।

'हिमालय की गोद में महादेवी साहित्य संग्रहालय' शीर्षक लेख में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि हिमालय की गोद में रहकर भी महादेवी ने साहित्य-साधना की है। यहाँ के लोगों, विशेषकर नारी समाज को मानवीय चेतना, शीतलता, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान की दिशा में यह जानना अच्छा लगा कि यहाँ के निवासियों ने उनके जीर्ण-शीर्ण भवन को एक स्मारक के रूप में विकसित करने का फैसला किया है।

लेखक विशुद्ध रूप से साहित्यकार हैं, इसलिए उनके इन यात्रा लेखों में साहित्यिक घटनाएँ और परिदृश्य बार-बार दिखाई देते हैं।

यात्रा की दृष्टि से इस संग्रह के सारे लेख सार्थक हैं। लेखक ने जिस जगह की यात्रा की है, अपनी लेखनी से उस जगह की उपादेयता को सिद्ध किया है। उसकी राष्ट्रीय चेतना और मानवीय सरोकार हर लेख में किसी-न-किसी रूप में परिलक्षित होता है।

साथ ही पुस्तक में संकलित कुछ खास जगह की तसवीरें, विषयानुकूल पुस्तक का नामकरण एवं मुखपृष्ठ इस पुस्तक को उल्लेखनीय बना देते हैं। यह पुस्तक बौद्धिक पाठकों के बीच सराही जाएगी।

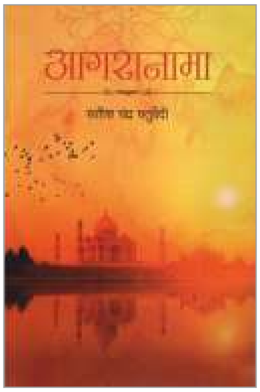

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **सतीश चंद्र चतुर्वेदी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 186

मूल्य : रु. 245/-

आगरानामा

'आगरानामा' यानी आगरा की कहानी। इस पुस्तक में ताजनगरी आगरा का इतिहास है। एक ऐसे शहर का इतिहास, जो सदियों तक सत्ता का केंद्र रहा और आज अपनी ऐतिहासिक इमारतों के लिए विश्वप्रसिद्ध है। इस पुस्तक में प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक आगरा की राजनीतिक स्थिति के साथ-साथ वहाँ की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना और संस्कृति की भी झलक है।

इस पुस्तक के अध्याय इतिहास के कालखंडों के अनुसार विभाजित किए गए हैं। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में उस कालखंड के प्रमुख स्मारकों के नाम दिए गए हैं। फिर उस समय की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन है। कई अध्यायों में घटनाओं, व्यक्तियों और स्थानों के बारे में छोटी-छोटी टिप्पणियाँ हैं। ये टिप्पणियाँ परस्पर असंबद्ध लगती हैं, लेकिन आगरा के इतिहास की कड़ियाँ बनती हैं। यहाँ लेखन शैली ऐसी है कि जब तक इतिहास के एक खंड पर ध्यान केंद्रित हो, दृश्य बदल चुका होता है। पुस्तक में अनेक स्मारकों के चित्र हैं और उन चित्रों का परिचय भी।

प्रथम अध्याय में लेखक ने आगरा के प्रागैतिहास का और पौराणिक ग्रंथों में इस क्षेत्र के उल्लेख का अध्ययन प्रस्तुत किया है। पहले इसका नाम संभवतः 'अग्रवन' या 'अंगिरा' था। आगरा में कनिष्क-काल और गुप्त-काल के कुछ अवशेष मिले हैं।

भारतीय इतिहास के उत्तर-मध्य युग में आगरा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और रणनीतिक केंद्र के रूप में उभरा। इस काल से यहाँ के इतिहास के पुख्ता प्रमाण मिलने लगते हैं। लेखक के अनुसार, लोदियों से पहले भी इस शहर का नाम 'आगरा' ही था। लोदियों ने इसे अपनी सल्तनत की राजधानी बनाया।

मुगलकाल में आगरा को सबसे अधिक महत्व मिला। इस पुस्तक में आगरा के मुगलकालीन इतिहास का विस्तृत वर्णन है। आगरा दीर्घकाल तक मुगलों की राजधानी रहा। अकबर के शासनकाल में आए अंग्रेज यात्री राल्फ फिच ने आगरा और फतेहपुर सीकरी को तत्कालीन लंदन से भी बड़ा और अधिक आबादी वाला शहर बताया है। मुगलों ने आगरा और इसके आस-पास अनेक शानदार इमारतें बनवाईं। मुगलकाल में लिखी गई बाबरनामा, हुमायूँनामा, अकबरनामा, जहाँगीरनामा आदि पुस्तकों में आगरा के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ हैं।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद आगरा पर अनेक अल्पकालीन शक्तियों का अधिकार रहा। पुस्तक में वर्णित है कि ब्रिटिश राज्य का विस्तार करने में आगरा अंग्रेजों की प्रमुख चौकी बना। इसमें आगरा पर ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक के यहाँ के हालात और आज़ादी की लड़ाई में इसकी भूमिका दिखाई गई है।

लेखक ने पुस्तक को प्रामाणिक बनाने के लिए आगरा के इतिहास से संबंधित सभी संभव स्रोतों की छानबीन की है, लेकिन कोई भी इतिहास पुस्तक संपूर्ण और निर्विवाद नहीं होती। इस पुस्तक की प्रस्तावना में आगरा के पूर्व मंडल आयुक्त सुरेंद्र पाल सिंह गौड़ ने कहा है कि इसमें यहाँ से जुड़े मराठा इतिहास को गौण रखा गया है। ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों के प्रति इतिहासकारों में अकसर मतभिन्नता भी होती है। लेखक ने आगरा के इतिहास से संबंधित पुस्तकों में भी ऐसी कई विसंगतियों को इंगित किया है।

पुस्तक आगरा से संबंधित दिलचस्प जानकारियों से भरी है, जैसे—अकबर के पुस्तकालय में चौबीस हजार पुस्तकें थीं। बीरबल, टोडरमल और रहीम जैसे अकबर के नवरत्न कुशल सेनानायक भी थे। आगरा की कहानी यहाँ के मशहूर शायर नजीर अकबराबादी या मियाँ नजीर के जिक्र के बिना अधूरी रहेगी। इस शहर के प्रेम में पड़कर उन्होंने कहा था, "मुफलिस कहो, फकीर कहो, आगरे का है, शायर कहो, नजीर कहो आगरे का है।" पुस्तक में इसकी झलक है कि आगरा के इस लोकप्रिय जनकवि ने वहाँ के गंगा-जमुनी तहजीब, हाट-बाट और तीज-त्योहारों का कैसा जीवंत चित्रण किया है।

आगरा से आत्मीयता के बावजूद यहाँ लेखक के नजरिए में इतिहासकार की तटस्थता है। उसने इस पुस्तक के लेखन के लिए व्यापक शोध किया है। पुस्तक के अंत में सहायक पुस्तकों की सूची दी गई है। ऐतिहासिक और साहित्यिक कृतियों की यह संदर्भ सूची अन्य शोधकर्ताओं के लिए भी उपयोगी है।

आगरा का मुगलकालीन इतिहास बहुचर्चित है, किंतु मुगल-पूर्व और मुगलों के बाद के आगरा के बारे में जानने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है। पुस्तक पढ़कर लगता है कि आगरा का इतिहास सिर्फ सत्ता के लिए दाँव-पेंच और खून-खराबे का इतिहास ही नहीं है, बल्कि

निर्माण और सृजन का इतिहास भी है। यहाँ का किला अतीत की सत्ता और शक्ति का प्रतीक है, तो ताजमहल रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में, 'काल के कपोल पर आँसू की एक बूँद' की तरह है। ताज सहित अन्य अनेक दर्शनीय स्थलों के कारण आगरा देश-विदेश के पर्यटकों का पसंदीदा शहर है। यह पुस्तक पाठकों के लिए आगरा की गाइड बुक का काम भी करेगी।

पुरस्कार की उठावनी

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **अरविंद तिवारी**

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्राईवेट लिमिटेड, नोएडा।

पृष्ठ : 130

मूल्य : रु. 250/-

अरविंद तिवारी हमारे समय के एक महत्वपूर्ण और वरिष्ठ व्यंग्यकार हैं। कोरोना काल में खुद कोरोना से संघर्ष करते हुए उसे परास्त कर स्वास्थ्य लाभ हासिल करने में सफल रहे हैं। कोरोना काल में समस्त मानव जीवन जिस प्रकार की अव्यवस्था एवं बेबसी का शिकार हुआ है, वह नितांत अप्रत्याशित है। ऐसे समय में जब हताशा-निराशा का वातावरण चरम पर हो, एक रचनाकार की भूमिका बहुत बढ़ जाती है। ऐसे प्रतिकूल समय में लेखक की रचनात्मक सक्रियता का परिणाम है यह संग्रह। इस संग्रह की भूमिका में लेखक ने लिखा है, "कोरोना महामारी के प्रति आम आदमी के साथ लेखक भी युद्ध कर रहे हैं। साहित्यकारों की मानसिक स्थिति ही नहीं बदली, बल्कि इस बीमारी ने बहुत कुछ बदल दिया है। सभी को सीमाओं में बाँध दिया है। लेखक मूलतः यायावर होता है और यात्राएँ उसके लिए खाद-पानी की तरह होती हैं। जाहिर है कि लेखन के प्रेरक तत्व भी इस बीमारी ने बदल कर रख दिए हैं, पर अच्छी बात यह है कि सोशल मीडिया का आकर्षण बना रहा और उसने कई लेखकों को कुंठाग्रस्त होने से बचा लिया।" इस संग्रह की भूमिका में यह भी उल्लेख है कि "दो-तीन को छोड़ दें तो सभी व्यंग्य पिछले छह महीनों में लिखे गए हैं। सभी विभिन्न अख़बारों में प्रकाशित हो चुके हैं।" इस संग्रह की रचनाओं की पृष्ठभूमि तात्कालिक है, किंतु रचनाओं को वर्तमान की कसौटी पर परखने की लगातार कोशिश की गई है। इस दृष्टि से यह संग्रह महत्वपूर्ण और पठनीय है।

संग्रह की पहली रचना 'लापरवाहियों का मेघ मल्हार' में एक तरफ मीडिया के चरित्र को अनावृत्त करने की कोशिश की गई है तो दूसरी तरफ साहित्यिक साजिशों का भी बखूबी पर्दाफाश किया गया है। पहली बरसात की सोंधी खुशबू का एहसास इसलिए नहीं हुआ क्योंकि कोरोना ने हमारी सूँघने की शक्ति पर हमला कर दिया है। पुस्तक में विसंगतियों की पहचान के साथ उन पर गुदगुदाते हुए और कहीं-कहीं कठोरतापूर्वक प्रहार करने में कोई कमी नहीं की गई है। "अभी जायसी के बारहमासी के तर्ज पर कोरोना का बारहमासी रचा जा रहा है...राग मेघ मल्हार मध्यकाल के कवियों की रचनाओं में बहुतायत में पाया जाता है। कबीर के पदों में चौबीस राग खोज लिए गए हैं। ये कवि संगीत के विशेषज्ञ भी थे। अब ऐसा नहीं है, इसलिए मेघ अकसर रूठ जाते हैं।" इसका एक ध्वन्यार्थ आज के तथाकथित रचनाकारों की वास्तविकता से पाठकों को परिचित कराना भी है।

समकालीन साहित्यिक जगत की वास्तविकता यह है कि जमीनी धरातल का अता-पता होता नहीं और सिर्फ गूगल के स्रोत से कुछ जानकारी लेकर हम स्वयं को विद्वान सिद्ध करने की होड़ में लग जाते हैं। इस विसंगति को 'बर्बादी साहित्य और फसल की' शीर्षक रचना में बहुत अच्छी तरह से उठाया गया है। "आधुनिक साहित्य में यह लोचा है कि परवरदिगार गूगल पर गाँव आता है और एसी कक्ष में बैठे लेखक के कंप्यूटर में उतर जाता है। लोचा यह भी है कि समीक्षक इसे ही असली गाँव मान लेता है क्योंकि वह भी गूगल पर ही गाँव के दर्शन करता आया है। ऐसे समीक्षक ने आज तक दर्पण में अपना चेहरा देखा ही नहीं। दर्पण मिलते ही वह उसे लेखक के सामने रख देता है। फिर लेखक से कहता है, देखो तुम कैसे लग रहे हो। समीक्षक का यही ऑब्जरवेशन आधुनिक आलोचना की धुरी है।" वर्तमान दौर में लेखन और समीक्षा कर्म की वास्तविक स्थिति प्रायः ऐसी ही है। ऊपर से सोशल मीडिया के प्रभाववश ऐसे लेखकों का उदय दिन दुनी, रात चौगुनी गति से हो रहा है। लेखक ने अपने अनुभव जगत के ऐसे अनेक प्रसंगों की विसंगतियों की पहचान और प्रहार इस संग्रह की रचनाओं में किया है।

पुस्तक में 'लोकतंत्र का सूचकांक' रचना के बहाने समकालीन राजनीति को पाठकों के सामने रखने की कोशिश की गई है। "जब दुनिया आर्थिक तंत्र से चल रही है तो लोकतंत्र बेचारा ऊपर कैसे चढ़ सकता है। दिल्ली में उम्मीदवारों की पाँच साल में पाँच गुना संपत्ति बढ़ेगी तो लोकतंत्र लुढ़केगा ही। पूरे देश के नेताओं की जेबों का सूचकांक बढ़ रहा है। नेताओं की जेब और लोकतंत्र के सूचकांक के बीच व्युत्क्रमानुपाती रिश्ता है। इधर जेब भरी, उधर लोकतंत्र लुढ़का।" इस प्रकार के अनेक प्रसंगों की पहचान और प्रहार इस संग्रह की विशेषता है।

यह संग्रह पाठकों को समकालीन जगत की विसंगतियों से साक्षात्कार कराने और रचनात्मक आनंद की पूर्ति में सहायक सिद्ध होगा।

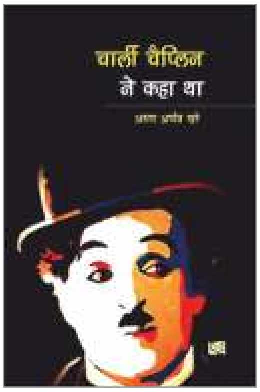

चार्ली चैप्लिन

ने कहा था

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **अरुण अर्णव खरे**

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा।

पृष्ठ : 108

मूल्य : रु. 250/-

अरुण अर्णव खरे के कहानी-संग्रह 'चार्ली चैप्लिन ने कहा था' में कुल ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह की सारी कहानियाँ किसी-न-किसी रूप में कोरोना काल के संदर्भ से जुड़ी हुई हैं। पेशे से अभियंता अरुण अर्णव खरे का नाम साहित्यिक क्षेत्र में किसी परिचय का मुहताज नहीं है। वे साहित्य की विविध विधाओं में निरंतर लिखते रहते हैं और अब तक अनेक संस्थाओं से सम्मानित एवं पुरस्कृत हो चुके हैं। 'खेलों' पर भी उनकी छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

वैश्विक बीमारियाँ अपने समय और भविष्य को प्रभावित करती हैं। अतीत में हैजा, प्लेग, तपेदिक, चेचक, इंफ्लुएंजा आदि बीमारियों ने अनेक घर-परिवार उजाड़े हैं एवं अनेक पीढ़ियों को गहरे भय और संत्रास में धकेला है, पर ऐसे दौर में कुछ ऐसे साहित्यकार भी हुए हैं, जिन्होंने बीमारियों को केंद्र में रखकर साहित्य की विविध विधाओं में रचनाएँ की हैं।

कोरोना वायरस (कोविड-19) भी ऐसी ही वैश्विक बीमारी की सूची में शामिल हो गया है। इस वायरस से अब तक लाखों लोग अपनी जान गँवा चुके हैं और उसके प्रकोप से परोक्ष और अपरोक्ष रूप में करोड़ों लोग प्रभावित हुए हैं। इस दौर में भी ऐसे अनेक रचनाकार हैं, जिन्होंने कोरोना को केंद्र में रखकर कविता, गीत, ग़ज़ल, कहानी आदि विधाओं में अहर्निश लेखन किया है, जिनमें नरेन्द्र सिंह 'निहार' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस वायरस का प्रभाव इतना भयावह रहा है कि इसके चलते पूरी दुनिया की प्रगति रुक गई है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांप्रदायिक स्थितियाँ बिगड़ने लगी हैं। आज भी कोई देश इस बीमारी से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ है।

इस संग्रह की पहली कहानी का शीर्षक है—'पहला पॉजिटिव'। कोरोना वायरस के शुरुआती दौर में बार-बार लॉकडाउन लगने से लोग परेशान हो गए थे। हर चैनल कोरोना वायरस के बारे में इतना बढ़ा-चढ़ाकर समाचार परोसता था कि घर से बाहर न निकलने के बावजूद भी ऐसा लगता था कि हम कभी भी कोरोना की चपेट में आ सकते हैं। किराने, दूध, फल की दुकानें तो समय-समय पर खुलती थीं, पर वहाँ से सामान लाना बड़ा कठिन होता था। दवाई और खाने-पीने के सामानों की कीमत आकाश छूने लगी थी। लोग कम-से-कम में गुजारा करने लगे थे। जीवन की रक्षा के लिए सेनेटाइजर, मास्क जरूरी हो गया था। अब भी इससे पिंड नहीं छूटा है। इस कहानी में यह तथ्य उभरकर आया है कि अपनों के बीच कितना दुराव आ गया था, पर ऐसे में भी मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत लोग एक-दूसरे की सहायता करने को तत्पर रहते हैं। 'फातिमा आंटी' के माध्यम से कहानीकार ने समाज का उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है।

'जॉटर रिफिल कहानी' में धनिक वर्ग की अहंकारी लड़की नैंसी की मानसिकता को उजागर करते हुए कहानीकार ने कोरोना काल में लगे लॉकडाउन से उत्पन्न जटिलता एवं अड़चनों को बड़े ही सरल-सहज शब्दों में उकेरा है। निजी संस्थाओं के नियोक्ताओं ने अपने कर्मठ कर्मचारियों को कैसे पद से हटा दिया, उनका वेतन आधा किया, उस दुर्व्यवहार को भी रेखांकित किया है।

जमींदारों ने शताब्दियों तक आमजनों को अपने पैरों से रौंदा है, पर यदि वह जमींदारी के साथ राजनीतिक रसूख वाला हो जाए, तो उसकी क्रूरता और बढ़ जाती है। इस कहानी में रिपुदमन, उसकी बहन छाया, नौकर विसाहू के माध्यम से कहानीकार ने 'ऋण' शीर्षक कहानी में कोरोना काल की स्थितियों का चित्रण करते हुए पात्रों के मनोभावों को इस तरह उकेरा है कि एक साथ कई संदर्भ इस कहानी से जुड़ जाते हैं।

'लॉकडाउन वरदान कथा' में कहानीकार ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि कोरोना काल में बहुत-सी चीजों पर पाबंदी लग गई थी। उसमें शराब भी थी। रोज शराब पीकर घूरों पर लेटे रहने वालों के लिए लॉकडाउन कुछ हद तक वरदान साबित हुआ। झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले एक गरीब परिवार के मुखिया राधाचरन की शराब कैसे लॉकडाउन में छूटी, कैसे उसका परिवार सुखी जीवन जीने लगा, उसको बहुत ही सरल-सहज शब्दों में चित्रित किया गया है। इस कहानी का प्रतिपाद्य यह है कि आदमी चाहे तो कैसे अभिशाप को वरदान में बदल सकता है।

'चार्ली चैप्लिन ने कहा था' इस पुस्तक की शीर्षक कहानी है। विश्व का जाना-माना कलाकार 'चार्ली चैप्लिन' अकसर कहा करता था कि जिंदगी का वह दिन सबसे बुरा दिन होता है, जिस दिन मैं हँसता नहीं हूँ। सच्चाई तो यह है कि दुनिया में ऐसा कोई आदमी नहीं, जिसके सामने परेशानियाँ नहीं आती हैं। जीवन तो सुख-दुख का मिश्रित रूप है, जो आदमी अपनी परेशानियों को सिर पर रख लेता है, उसके चेहरे पर हँसी नहीं आ सकती है। हँसी अनेक बीमारियों को दूर करती है। इस कहानी में एक राजनेता यानी विधायक की असंवेदनशीलता को रेखांकित किया गया है। साथ ही, कोचिंग के लिए कोटा आए विद्यार्थियों की परेशानियों को दर्शाया गया है; पर कैसे चार्ली चैप्लिन की उक्तियों को अपने जीवन में उतारकर कुछ

छात्र-छात्राएँ परेशानियों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देते, उसका सजीव चित्रण इस कहानी में हुआ है। यकीनन यह संग्रह की उत्कृष्ट कहानी है।

इस संग्रह की हर कहानी के अंत में किसी चुनिंदा कहानीकार साहित्यकार की टिप्पणी दर्ज है, जिसे कहानीकार ने 'नवाचार' शब्द से रेखांकित किया है। इस संग्रह की सारी कहानियाँ कोरोना काल के अनेक पक्षों को दर्शाती हैं।

अद्‌भुत संन्यासी

समीक्षक : **कमलेश पांडेय 'पुष्प'**

लेखिका : **आरती स्मित**

प्रकाशक : हंस प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली।

पृष्ठ : 96

मूल्य : रु. 175/-

इस किशोर उपन्यास में स्वामी विवेकानंदजी के संपूर्ण जीवन का रोचक वर्णन किया गया है। पुस्तक को विभिन्न शीर्षकों में आबद्ध करके स्वामीजी के जीवन से जुड़े प्रत्येक घटनाक्रम को विस्तृत रूप से बतलाया गया है। उनके जीवन की संघर्ष गाथा को पढ़कर किशोर मन को प्रेरणा मिलना स्वाभाविक तौर पर दृष्टिगत होता है। उपन्यास के प्रारंभ में लेखिका ने स्वामी जी के जन्म के बारे में बताया है। पिता विश्वनाथ दत्त और माता भुवनेश्वरी देवी को अपने नन्हे शिशु में एक श्रेष्ठ मनुष्य की झलक दिखती है और उनका नाम नरेंद्रनाथ दत्त रखा जाता है। पिता विश्वनाथ दत्त ने जब ज्योतिषी से उनकी कुंडली बनवाई तब उसने बताया कि यह अद्‌भुत बालक संन्यासी बनेगा। पुस्तक में स्वामीजी के बचपन की विभिन्न घटनाओं को सरल एवं रोचक संदर्भों से जोड़ते हुए न केवल प्रेरणाप्रद, बल्कि ज्ञानवर्धक बना दिया गया है। स्कूल में नरेंद्रनाथ का चयन मेधावी छात्रों की सूची में अंग्रेजी पढ़ने के लिए किया जाता है, परंतु वे अंग्रेजी पढ़ने से इनकार कर देते हैं। उनका कहना था कि अंग्रेजी पढ़कर हमें हमारे भाषा साहित्य से दूर किया जा रहा है। उनका दाखिला कलकत्ता के सबसे अच्छे प्रेसिडेंसी कॉलेज में बड़ी आसानी से हो गया था। उन्होंने अपनी इच्छा से ऐसे विषयों का चयन किया था जिनमें कम अंक आते हैं और नौकरी में भी सहायता नहीं मिलती। इसके बारे में उनका कहना था कि मैं ज्ञान बढ़ाने के लिए पढ़ता हूँ, शिक्षा का अर्थ यही है।

'सच्चे गुरु की खोज' शीर्षक अध्याय में नरेंद्रनाथ दत्त का संपर्क स्वामी रामकृष्णजी से होने का वर्णन है। उनको अपने गुरु में अद्‌भुत शक्ति होने का एहसास होता है। उनके प्रभाव से ही उनकी रुचि आध्यात्मिक दिशा में निरंतर बढ़ती चली गई। युवा संन्यासी के रूप में वे स्वामी विविदिशानंद के नाम से जाने जाते रहे। उन्होंने सर्वप्रथम भारत भ्रमण कर पाँच वर्षों में देश की अलग-अलग भाषा और संस्कृति को समझा। देशाटन के प्रसंगों को उपन्यास में बहुत ही मनोरंजक तरीके से वर्णित किया गया है ताकि किशोरवय के बच्चों का ध्यान भटकने न पाए। इस युवा संन्यासी के त्याग भरे जीवन से प्रेरणा मिल सके, लेखिका ने इस बात का हमेशा ख़याल रखा है। उनकी इस यात्रा में उन्हें हर धर्म के लोगों से मिलते हुए और छुआ-छूत से दूर रहकर सभी से आत्मीयतापूर्वक व्यवहार करते दिखाया गया है।

'अद्‌भुत भारतीय संन्यासी' शीर्षक के अंतर्गत उपन्यास में बताया गया है कि स्वामीजी शिकागो में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में जब जाने लगे तब उनके शिष्यों ने मैसूर और रामनद के महाराज से धन का सहयोग लेकर सारा प्रबंध किया। इसी समय महाराज ने सलाह दी कि वे इस सम्मेलन में विवेकानंद के नाम से शामिल हों। महाराज की सलाह उन्हें अच्छी लगी और उन्होंने अपना स्थायी नाम विवेकानंद रखा और इसी नाम के साथ अमर हो गए।

11 सितंबर, 1893 को शिकागो में विश्व धर्म सम्मेलन का शुभारंभ हुआ था। विवेकानंद जी ने इस सम्मेलन में हिंदू धर्म को एक ऐसे धर्म के रूप में प्रस्तुत किया जो मानता है कि सभी धर्मों का समान महत्व है। उनके ओजस्वी भाषण से शिकागो में तो उनकी लोकप्रियता बढ़ी ही, भारतवासियों को भी उस समय की गुलाम जिंदगी में अपने भारतीय होने का गर्व हुआ।

उपन्यास में विवेकानंदजी के आदर्श वाक्यों का भी समावेश कर किशोर मन को जीवन में सदैव संघर्ष करके अपना लक्ष्य हासिल करने की प्रेरणा दी गई है। वे अपने भाषण में कहते—"हमें स्टील की नसों और लोहे की मांसपेशियों की जरूरत है।" वे बार-बार अपने संन्यासी साथियों एवं युवाओं को प्रेरित करते—"उठो, जागो और तब तक न रुको, जब तक लक्ष्य पर पहुँच न जाओ।"

उपन्यास के आखिर में 'अंतिम यात्रा' शीर्षक के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद जी के शरीर छोड़ देने का वर्णन है। इसके अंतर्गत लेखिका ने यह भी बताया है कि स्वामी जी ने कैसे एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के 25 खंडों को अल्प समय में ही पढ़कर संपूर्ण ज्ञान को आत्मसात कर लिया था। शिष्यों के पूछने पर उन्होंने बताया कि ऐसा मन की एकाग्रता से संभव हो जाता है।

उपन्यास की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। किशोरवय के बच्चे बिना किसी कठिनाई के प्रत्येक घटनाक्रम को समझ पाने में समर्थ हो सकें, लेखिका ने इस बात का ध्यान रखा है। यह उपन्यास किशोरवय के बच्चों को जीवन में अपना लक्ष्य प्राप्त करने एवं पग-पग पर कठिनाइयों से जूझने की प्रेरणा तो देता ही है, स्वयं के जीवन को नियम-अनुशासन में बाँधकर शांत एवं प्रसन्नचित्त कैसे रहा जाए, इस बात का भी सरलतापूर्वक ज्ञान कराता है।

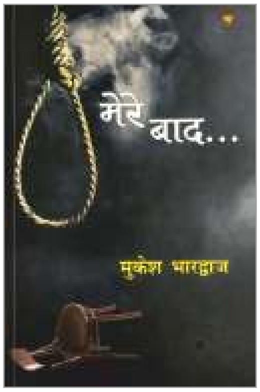

समीक्षक : **रोहित कौशिक**

लेखक : **मुकेश भारद्वाज**

प्रकाशक : यश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 272

मूल्य : रु. 299/-

मेरे बाद

इस दौर में जबकि हिंदी में जासूसी उपन्यासों की कमी खल रही है, वरिष्ठ पत्रकार मुकेश भारद्वाज ने इस शृंखला में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है। हाल ही में प्रकाशित उनका उपन्यास 'मेरे बाद' इस कमी को पूरा तो करता ही है, यह भी सिद्ध करता है कि अपराध और रहस्य पर भी बेहतर लिखा जा सकता है। इसमें कोई शक नहीं है कि एक समय में जासूसी उपन्यासों ने हिंदी का एक विशाल पाठक वर्ग तैयार किया था। धीरे-धीरे लेखक यथार्थवादी दृष्टिकोण के नाम पर जासूसी उपन्यासों से दूर होते चले गए। जासूसी उपन्यास लिखना उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ लगने लगा। हालाँकि हर क्षेत्र में प्रगति होने के बावजूद समाज में अपराध बढ़ते रहे, लेकिन लेखकों ने अपराध और अपराध के रहस्य को यथार्थ न मानते हुए इस तरह के लेखन से दूरी बनाए रखी। मुकेश भारद्वाज ने इस दूरी को खत्म कर एक नई राह दिखाई है।

दरअसल अपराध भी एक तरह का यथार्थ ही है, लेकिन समस्या यह है कि हम अपराध और रहस्य केंद्रित लेखन को यथार्थवादी लेखन मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इस खोखले आदर्शवाद के कारण अपराध और रहस्य केंद्रित लेखन के नाम पर स्तरीय उपन्यास सामने नहीं आ पाते हैं। इस मानसिकता के कारण ही बाजार में ऐसे विषयों पर सतही किताबों की संख्या बढ़ने लगती है। इस निराशाजनक माहौल में मुकेश भारद्वाज ने हिम्मत दिखाई है। उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता इसकी रोचकता है। शायद यही कारण है कि शुरू से लेकर आखिर तक इस उपन्यास की पठनीयता बनी रहती है। लंबे उपन्यास में पात्रों को साधना और तारतम्यता स्थापित रखना चुनौतीपूर्ण होता है।

मुकेश भारद्वाज ने कहीं भी उपन्यास को बोझिल नहीं होने दिया है। पाठक एक बार इसे पढ़ना शुरू करता है तो अंत तक उत्सुकता के साथ पढ़ता चला जाता है। इस उपन्यास में कई रहस्य छिपे हैं। उपन्यास की शुरुआत किशोर चंद्र वशिष्ठ द्वारा फाँसी लगाने की कोशिश से होती है। फाँसी लगाने से पहले वह बार-बार पिछली यादों के सागर में गोते लगाता रहता है और अंत में फाँसी लगा लेता है। हालाँकि फाँसी लगाने के दौरान संदिग्ध हालात कुछ और इशारा करते हैं। इस उपन्यास का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि किशोर चंद्र वशिष्ठ ने फाँसी लगाई है या फिर उनकी हत्या की गई है। रंगीन मिजाज के प्राइवेट जासूस अभिमन्यु को शक है कि यह आत्महत्या का मामला नहीं है, बल्कि किशोर की हत्या की गई है। दरअसल किशोर की पत्नी पहले ही स्वर्ग सिधार गई थी। किशोर के अपने बच्चों से ठीक संबंध न होने के कारण बच्चे अपने-अपने परिवार सहित अलग जगह रह रहे थे। किशोर के साथ केवल उनकी नर्स रागिनी रहेजा ही रहती थी। किशोर के बच्चे यह नहीं चाहते थे कि इस केस की जाँच हो। बहरहाल विभिन्न उतार-चढ़ावों और रहस्यों के साथ यह कथा आगे बढ़ती है।

यह उपन्यास केवल अपराध और रहस्य का मनोरंजक दस्तावेज ही नहीं है, बल्कि कई सवाल भी खड़े करता है। यह कथा एक ऐसी जिंदगी का अक्स भी प्रस्तुत करती है, जिसमें कुछ भी अनैतिक नहीं है। एक ऐसी जिंदगी जिसमें नैतिक और अनैतिक के बीच का फर्क मिट गया है।

आधुनिकता और प्रगतिशीलता के नाम पर हम ऐसी जिंदगी के पक्ष में कितने ही तर्क क्यों न प्रस्तुत करें, लेकिन यह कटु सत्य है कि यह रास्ता अंततः हमारे रिश्तों को लील जाता है। निश्चित रूप से स्वार्थ के बिना जीवन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। हमारे जीवन में अनेक तरह के स्वार्थ होते हैं। उन स्वार्थों को पूरा करते हुए ही हमारा जीवन बीत जाता है, लेकिन जब केवल स्वार्थ ही सर्वोपरि होकर हमारे जीवन का उद्देश्य बन जाए तो रिश्तों की गरिमा खत्म होने में देर नहीं लगती। यह कथा रिश्तों की गरिमा खत्म होने की प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करती है। इस तरह की कथा में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की बात हमें अजीब-सी लगती है इसलिए हम केवल रहस्य और रोमांच में ही फँसकर रह जाते हैं और कथा के पीछे मनोरंजन के भाव को ही प्रमुख मान लेते हैं। हालाँकि ऊपरी तौर पर ऐसा विश्लेषण हमें दिखाई नहीं देता है, लेकिन जब हम कथा का निहितार्थ गंभीरता से समझने की कोशिश करते हैं तो ऐसे विश्लेषण की कोई-न-कोई परत दिखाई दे ही जाती है।

इस किताब की कथा हमें यह सोचने के लिए भी विवश करती है कि हमारे रिश्ते क्यों दरक रहे हैं? क्या केवल अपना स्वार्थ पूर्ण कर हम रिश्तों को गरिमा प्रदान कर सकते हैं? निश्चित रूप से ऐसा व्यवहार परिवार के लिए घातक ही सिद्ध होता है। उपन्यास पढ़ते हुए महसूस होता है कि इसके ज्यादातर पात्र जिंदगी अपने तरीके से जी रहे हैं, जिनमें कोई भावनात्मक जुड़ाव नहीं है।

मुकेश भारद्वाज के श्रम और कौशल का ही नतीजा है कि यह उपन्यास केवल रोमांच ही पैदा नहीं करता, बल्कि आज के सामाजिक यथार्थ पर भी गंभीरता के साथ प्रहार करता है।

आस्था की अनुगूँज

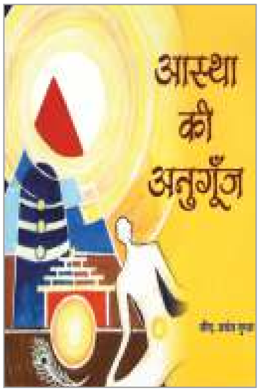

समीक्षक : **ज्योति जैन**

लेखक : **सीए. जयंत गुप्ता**

प्रकाशक : इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 126

मूल्य : रु. 250/-

हम उस देश के नागरिक हैं जहाँ हर 50 मील पर बोली, पहनावा, रूप-रंग, खान-पान, संस्कार, रीति-रिवाज सब बदल जाते हैं। हम उस देश के नागरिक हैं जहाँ संस्कार दिए नहीं जाते, बल्कि आचरण में लाए जाते हैं। हम उस देश के नागरिक हैं जहाँ देश के भूगोल के साथ ब्रह्मांड को भी जाना जाता है और वह भी आस्था के साथ। हम उस देश के नागरिक हैं जहाँ राष्ट्र को जननी का दर्जा दिया जाता है। और यही वह राष्ट्र है जहाँ लोगों के रोम-रोम में ईश्वर को लेकर एक आस्था बसी हुई रहती है और कुछ लोगों को उस आस्था की अनुगूँज सुनाई देती है।

जी हाँ...! मैं यहाँ बात कर रही हूँ सीए जयंत गुप्ता की प्रथम पुस्तक 'आस्था की अनुगूँज' की। जो व्यक्ति यह मानता है कि मुझे ईश्वर ने जो दिया है, बहुत दिया है और सर्वश्रेष्ठ दिया है। जो मेरे पास है, वह आवश्यकता से अधिक है और मुझे उसको औरों को सौंप देना चाहिए और यह सब मानने के साथ उस पर अमल में भी लाना जो व्यक्ति कर सकता है, निश्चित रूप से उसी की कलम से ये 52 पन्ने निकल कर आ सकते हैं, बल्कि 52 ही क्यों ऐसे कई-कई पन्ने निकल कर आ सकते हैं...आएँगे भी।

प्रथम दृष्टया यह पुस्तक कहीं-न-कहीं अध्यात्म से संबंधित जान पड़ रही थी, लेकिन जैसे-जैसे पन्ने पलटती गई। समझ में आता गया कि यह अध्यात्म नहीं, बल्कि एक अलग ही दुनिया में ले जाने वाली पुस्तक है। वह दुनिया जिसमें ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ आस्था बसती है। वह आस्था, जो ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है और जब आप ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होते हैं तो आपके चारों ओर विपरीत परिस्थितियाँ होने के बावजूद आप सकारात्मक रहते हैं क्योंकि उस सकारात्मकता से ही आपको शक्ति भी मिलती है और संबल भी। आप में उत्साह भी रहता है और आपको खुशी मिलती है और इस कृतज्ञता से उपजी जो खुशी होती है, वह निस्संदेह आपको आनंद देती है।

खुशी तो कई लोगों को मिल जाती है, लेकिन उस खुशी का आनंद वही उठा पाता है जो कृतज्ञ हो, विनम्र हो और जिसमें आस्था का भाव विद्यमान हो और जिनमें ऐसी आस्था के भाव विद्यमान रहते हैं, उनका हृदय उस विशाल सागर के समान होता है जो अपने भीतर गंदगी रखता ही नहीं सिर्फ गहराई रखता है, गंदगी को तो बाहर निकाल फेंकता है।

जयंत जी की शख्सियत, उनका व्यक्तित्व मुझे उनका लेखन पढ़ने के बाद कुछ ऐसा ही महसूस हुआ। ऐसा होता है कि आप किसी व्यक्ति से न भी मिले हों, लेकिन उनके विचार यदि आपने पढ़े हैं तो वह विचार जानकर ही आप उसके व्यक्तित्व का अंदाजा लगा सकते हैं। उसका व्यक्तित्व उसके लेखन में परिलक्षित होता है।

जयंत जी के साथ भी मेरी रू-ब-रू कभी मुलाकात नहीं हुई थी, लेकिन जब मैंने 'आस्था की अनुगूँज' पढ़ी तब मैंने उनके व्यक्तित्व का अंदाजा सहज ही लगा लिया और रही-सही कसर उनसे बातचीत के दौरान पूरी हो गई। मैं यहाँ उनके हर अनुभव या हर संस्मरण पर बात न करके उनके भावों पर ही बात कर रही हूँ जो कि उनकी उस संकल्प शक्ति से उपजे हैं जिसमें उन्हें लड्डू गोपाल की कृपा, सद्‌गुरु कृपा, श्री कृष्ण महिमा आदि से बिना किसी संशय के, बिना जीत की चाहत के अच्छाई लौटाने के अवसर प्राप्त होते हैं।

उनकी ईश्वर में आस्था ही उनकी कई बाधाओं को स्वतः ही दूर कर देती है। जैसा कि उन्होंने अनुभव किया, बिगड़े काम बन जाना, जो मन में भाव आए वह पूर्ण हो जाना, ऐसा उनके कई संस्मरणों में झलकता है। अपने व्यवसाय में कुछ परेशानियाँ होने पर जब वे ईश्वर से कहते हैं कि यदि मैं सच हूँ तो मुझे यह मिलना चाहिए और वह सच में ही मिल जाता है। यह उनकी ईश्वर के प्रति अटूट अगाध आस्था का ही उदाहरण है।

इन अनुभवों में हम पाते हैं कि उनका मन निर्मल है। उसमें औरों के प्रति संवेदनाएँ हैं, देने का सुख है और सबसे बड़ी बात उनकी संतुष्टि। यह सब उनके इन 52 आलेखों में मिलता है और सच कहूँ तो जयंत जी एक गृहस्थ के रूप में साधु गुणों के साथ नजर आते हैं। हिसाब-किताब, जोड़-घटाव, पेपर पर बैलेंस शीट देखते, मेंटेन करते हुए जीवन की बैलेंस शीट को भी उन्होंने बहुत अच्छी तरह मेंटेन किया है।

फिल्मी गीतों का सफर

समीक्षक : **घनश्याम श्रीवास्तव**

लेखक : **नवीन शर्मा**

प्रकाशक : नोशन प्रेस, चेन्नई।

पृष्ठ : 470

मूल्य : रु. 699/-

नवीन शर्मा की पुस्तक 'फिल्मी गीतों का सफर' गीतों के बॉलीवुड गीतों में रुचि रखने वाले तमाम लोगों के लिए एक आह्लादित और आशान्वित करने वाली है। श्री शर्मा की फिल्मी रुचि और लेखन की निरंतरता ने इस पुस्तक को ऐसी निधि से भर दिया है, मानो अतीत से लेकर आज तक कोई गीतों के गलियारे में लगातार घूमते हुए अपने मन-प्रांतर को भरता रहे और वह निधि खाली ही न हो। इस संकलन में गीतों के स्वर्णिम दौर, औसत दौर पुनर्स्थान का दौर, एवं प्रारंभिक दौर की

प्रवृत्तियाँ समाहित हैं। यह पुस्तक गीतों के वातायन की एक दोहरी ट्रीट भी है, जिसमें गीतों के साथ-साथ उन्हें रचने वाले गीतकारों की शैली, संघर्ष और विदाई के तमाम आख्यान गहराई से समेटे हुए है। आमतौर पर बॉलीवुड से जुड़ी अधिकांश पुस्तकों में कोई एक विषय-वस्तु इतनी समग्र जानकारी के साथ कम ही उभर पाती है। गीतों के तमाम फसानों की फेहरिस्त लिखते हुए लेखक ने अपनी पूरी संचित ऊर्जा लगा दी है, जिससे यह महज एक पुस्तक न होकर रेफरेंस सामग्री बन गई है। बॉलीवुड में कई मशहूर हस्तियों ने भी खुले दिल से पुस्तक को सराहा है। ऐसा इसलिए हो पाया क्योंकि किसी सुधी पाठक को यह जानने को मिले, किसके लिए पहला गाना किसने गाया, किस गाने को दो गीतकारों ने मिलकर लिखा, कुछ ही फिल्मों में लिखने वाले गीतकार कौन रहे और अन्य पेशे से आकर गीतकार बनने वाले सुप्रसिद्ध लोग कौन-कौन थे, यह जानना काफी दिलचस्प है।

यह पुस्तक अपने दौर के गीतों के पूरे स्वाद का सहभागी बनी मिलती है। पाठक चाहे कोई भी पन्ना पलट ले, उसे गीतों की ऐसी फेहरिस्त नजर आएगी, जिन्हें वह बेसाख्ता ही गुनगुना उठेगा और उसके जेहन में गीतों के शब्द अठखेलियाँ करते हुए उसे किसी निविड़ में ले जाएँगे। वहाँ गीत होंगे, शब्दों की सामर्थ्य होगी, पाठक होगा और साथ में होगा एक अदृश्य गायक, जो स्वर्गिक माहौल रच रहा होगा। यह अदृश्य गायक या तो रंगीनियाँ बिखेरेगा या दुख के अथाह सागर में धकेल देगा, देशभक्ति से भर देगा या फिर बागे-बहिश्त का दीदार करा देगा। गीतों के इतने रंग, इतनी फितरत, इतनी मोहब्बत किसी पुस्तक में मिल जाए, तो पाठक के दिल का हर कोना क्यों न भावनाओं से भर उठे?

यह पुस्तक हर गीत की संरचना के पीछे की एक खिड़की खोलती है, जहाँ से दिखने वाले नजारे गीतों के असर से अछूते नहीं रहते। पुस्तक के हर भाग में उस दौर के गीतों का एक पूरा संसार है, जहाँ कहीं गीतकार के अंदर चल रहे तूफान में शब्दों की कोई कश्ती डूब-उतरा रही होती है। हर दौर के गीत उस जमाने को पूरा-का-पूरा सामने खड़ा कर देते हैं। कई बार अपने अतीत को याद कर आदमी विचलित हो जाता है, क्योंकि वह जानता है कि बहुत सारे स्वर्णिम अवसर होंगे, जो अब कभी नहीं मिलेंगे। यादों की अलगनी पर टँगी वो भावनाएँ सारे गीत कुरेद कर रख देते हैं और मजे की बात यह है कि इस पुस्तक को पढ़ते हुए हर पीढ़ी खुद को अपनी यादों से मुखातिब कर सकती है। गीतों की रचनाओं की सामूहिकता को हर दौर में प्रासंगिक बनाए रखने वाली यह पुस्तक कई बार यादों पर किसी बिजली-सी गिरती है और मन को सँभालने के लिए कोई तड़ित चालक भी नहीं होता। गीतों में गुँथे शब्दों की तमाम संवेदनाओं को अध्याय-दर-अध्याय उकेर देना एक मनीषी जैसी साधना माँगता है और कभी-कभी हैरत होती है कि एक पत्रकार अपनी तमाम विसंगतियों से जूझते हुए संवेदनाओं का ऐसा संसार कैसे रच सकता है, लेकिन यह हुआ है। लेखन के यज्ञ में पूर्णता हेतु वक्त और भावनाओं का होम देकर लेखक नवीन शर्मा ने पूरे विधि-विधान से यह यज्ञ संपन्न किया है। अंततः पुस्तक 'फिल्मी गीतों का सफर' लेखन की दुनिया में एक अलग तरह की दस्तक है, जो अनसुनी नहीं रह सकती। पुस्तक की विषय-वस्तु जितनी गंभीर है, उसे उतनी ही सरलता से हर वर्ग के पाठकों की रुचि में ढालने वाली भाषा में आकार देकर लेखक ने गीतों के लगभग शतकीय इतिहास को एक ही प्वाइंट पर उकेर दिया है। अपने ज्ञान, अनुभव और क्षमताओं के मिश्रण से लेखक ने हर वर्ग के पाठकों को छूने की कोशिश की है।

कल्याणी

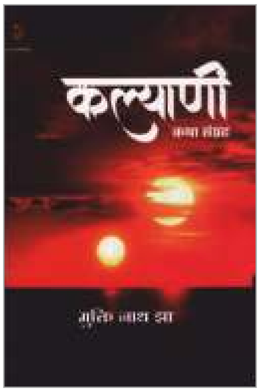

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **मुक्ति नाथ झा**

प्रकाशक : शतरंग प्रकाशन, लखनऊ।

पृष्ठ : 192

मूल्य : रु. 400/-

« संवेदना और लोकमंगल को साहित्य की मूल आत्मा मानने वाले मुक्ति नाथ झा के कहानी संग्रह 'कल्याणी' को पढ़ते समय इस बात का एहसास हुआ कि वह मनुष्यता की भावना को पुनः जागृत करना चाहते हैं। संग्रह की सभी 12 कहानियाँ कहीं-न-कहीं भारतीय संस्कृति की भी पैरवी करती हैं। लिहाजा इन कहानियों का उद्देश्य स्पष्ट है। इनमें आपको किसी तरह की कलात्मकता, बिंब या फैंटेसी नहीं मिलेगी। ये अपने मंतव्य को पूरा करने के लिए लिखी गई हैं।

कुछ कहानियों में अद्वैत वेदांत भारतीय चिंतन भी दिखाई पड़ता है, जो सत्य, असत्य और मिथ्या के बीच अंतर साफ करता है। 'मिथ्या' ऐसी ही कहानी है, जिसमें एक स्त्री खादी की वस्त्र प्रदर्शनी से सिल्क की एक साड़ी खरीदती है। इस साड़ी का मूल्य 55 हजार रुपये है, लेकिन कई मौके आने के बावजूद वह साड़ी नहीं पहनती। वह पूरा जीवन मिथ्या अर्थात साड़ी से चिपकी रहती है। मिथ्या के प्रति उसका मोह और अनुराग उसे इतना अशांत कर देता है कि वह संसार से विदा ले लेती है। लेखक भौतिक सुख-सुविधाओं से सचेत करता है। वह इन सभी सुखों को असत्य बताता है। मुक्ति नाथ झा ग्रामीण और मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों से भी परिचित हैं। वे यहाँ भी कहानियाँ खोज लेते हैं। 'अभिशाप' कहानी की नायिका मुन्नी देवी एक मध्यवर्गीय परिवार की बुजुर्ग महिला हैं। वह अपने प्रति लोगों की राय को लेकर पूर्वाग्रह में जीती है। वह यह जानने के

लिए हमेशा उत्सुक रहती है कि लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं। संयोग से उसे यह वरदान मिल जाता है। जब वह हर व्यक्ति के मन की बात जानने लगती है, यह जानने लगती है कि वह उसके बारे में क्या सोच रहा है तो यह वरदान उसके लिए अभिशाप बन जाता है। कहानी उस पाखंड को भी उजागर करती है जो प्रायः हम सबका स्वभाव बन गया है। हम सामने कुछ और कहते हैं और हमारे मन में कुछ और चल रहा होता है। मुक्ति नाथ झा की कहानियों में ग्रामीण जीवन और वहाँ होने वाले बदलावों को भी चित्रित किया गया है। 'बीजोरानी का टीला', 'वसूली', 'पेंशन', 'अमृत संवाद', 'कहाँ जाना है' और 'पेंशन' इसी मिज़ाज की कहानियाँ हैं। 'कपोत दंपत्ति' एक त्रासद कथा है, जिसमें कपोत-कपोती (कबूतर-कबूतरी) अपना पेट भरने के लिए मनुष्य की छत पर आ बैठते हैं। उन्हें लगता है कि मनुष्य अवश्य उन्हें खाने के लिए कुछ दाने दे देगा, लेकिन दाना देने की बजाय मनुष्य दोनों को मारकर उनके मांस का भक्षण करते हैं। लेखक पशुओं के प्रति मनुष्य के व्यवहार को दर्शाना चाहता है। उसका मंतव्य है कि हम पशुओं के साथ भी प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है 'पहलवान की पाँचवीं ललकार'। गाँव में रहने वाला एक पहलवान अपने पास हमेशा लाठी रखता है। वह अखाड़े में बड़े-बड़े पहलवानों को चित्त कर देता है। अपने गुरु की शिक्षा के चलते ही वह विवाह भी नहीं करता। अपने भतीजे ललन को वह हमेशा साथ रखता है। गाँव में वह चार बार अन्याय के खिलाफ लाठी उठाता है। वह हमेशा ललन से कहता है—ला...ओ...तो ललन लाठी। इस बीच समय बदल जाता है। ललन का विवाह हो जाता है। वह नकारा साबित होता है। वह अपने भतीजे के प्रति स्नेह और ममता में स्वयं को भी भूल जाता है। पहलवान स्वयं कमजोर हो जाता है। पहलवान अपना पूरा जीवन भतीजे के साथ भविष्य की सुखद कल्पना में ही बिता देता है, लेकिन जीवन के अंतिम क्षणों में भतीजे से ही उसे जो उपेक्षा और अपमान मिलता है, उसे वह बरदाश्त नहीं कर पाता। वह ललन से अपनी लाठी माँगता है। ला...ओ...तो ललन लाठी... पहलवान को यह याद ही नहीं आता कि उसने लाठी किसके लिए मँगवाई है। पहलवान मन-ही-मन अपने इष्टदेव को याद करता है—हे बाबा रामेश्वरम! ऐसा मत करना, मेरे ललन को कुछ न हो, पहलवान की आँखों से आँसू की दो बूँदें गिरती हैं और उसकी आँखें हमेशा के लिए बंद हो जाती हैं। पहलवान की यह पाँचवीं और अंतिम ललकार थी। यही जीवन का सत्य है। मुक्ति नाथ झा इस सत्य को बेहद सादगी और संजीदगी से चित्रित करते हैं।

मुक्त नाथ झा अपनी एक कहानी 'अग्रगण्य ज्ञानी' में दिखाते हैं कि भगवान राम सबसे बड़े ज्ञानी की खोज करते हैं। विभीषण, अंगद, जामवंत, लक्ष्मण, भरत और हनुमान अपने-अपने हिसाब से सबसे बड़े ज्ञानी की परिभाषा देते हैं। हनुमान कहते हैं, सत्संग का हमारे जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। जनकनंदिनी हनुमान को अमर होने का आशीर्वाद देती हैं और भगवान राम ज्ञानियों को अग्रगण्य होने का वरदान देते हैं। 'पिता' कहानी भी रामायण के ही एक हिस्से को दर्शाती है। आदर्श, नैतिकता और संस्कृति का दामन मुक्ति नाथ झा कहीं नहीं छोड़ते। इसलिए भाषा भी एक चौखटे से बाहर नहीं आ पाती। यही उनकी कहानियों की सीमा है।

एक समंदर गहरा भीतर

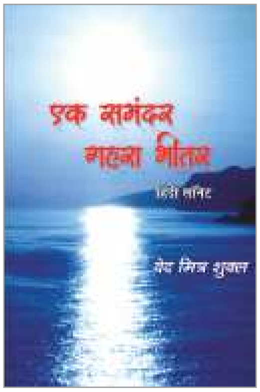

समीक्षक : **उज्ज्वल शुक्ल**

लेखक : **वेद मित्र शुक्ल**

प्रकाशक : एकेडमिक पब्लिकेशन एवं हेल्प फाउंडेशन, बहराइच।

पृष्ठ : 126

मूल्य : रु. 295/-

हिंदी साहित्य में सॉनेट का एक इतिहास है। सबसे पहले रूपनारायण पाण्डेय ने पराग (1924) नामक कविता-संग्रह में अपने कुछ सॉनेट्स प्रकाशित किए। उसके बाद से यह परंपरा आगे बढ़ी और इसमें मील का पत्थर कवि त्रिलोचन ने स्थापित किया। जहाँ तक सॉनेट की बात है, यह पश्चिमी छंद के रूप में देखा जाता है जिसे हिंदी द्वारा अपना लिया गया। ज़ाहिर-सी बात है कि छंद में शब्दों को रखने की, पंक्तियों को खत्म करने की आदि कई तौर-तरीके दोनों भाषाओं में भिन्न रहे हैं। सॉनेट को लिखने में ये सारी चुनौतियाँ रहती हैं, साथ ही एक और चुनौती जो लगभग हर छंदबद्ध कविताओं के साथ रहती है, वह है शब्दों का चयन। चयन ऐसा रहे कि भाव का स्तर नीचे न होने पाए। इन चुनौतियों को पारकर ही सॉनेट की रचना संभव है।

वेद मित्र शुक्ल कृत 'एक समंदर गहरा भीतर' हिंदी कविता की सॉनेट उपविधा में एक और कड़ी के रूप में जुड़ती है। किताब की भूमिका लिखते हुए वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र लिखते हैं, 'मुझे जीवन और कविता दोनों की सादगी भाती है। सादगी सरलता का नाम नहीं है। वह जीवन की गहरी-से-गहरी सच्चाई को आपके सामने ऐसे रख देती है कि आप बिना किसी भाषाई या शैलीगत उलझन में फँसे सहज ही उसके साथ हो लेते हैं। तो वेद की चाहे किसी विधा की, किसी शैली की रचना हो, उसमें सहजता का गुण व्याप्त है।'

वेद मित्र शुक्ल अपनी कविताओं में जितनी सादगी बरतते हैं, उतनी ही सादगी उनकी भाषा में भी नज़र आती है जो कि कविता को एक लय में बाँधे रहती है। 'एक कहानी कहती थी अपनी भी अम्मा' शीर्षक वाले सॉनेट में वो लिखते हैं—'एक कहानी कहती थी अपनी भी अम्मा/बचपन था सो मोल नहीं समझा तब उनका/शब्द पिरोती जाग रही होती थी अम्मा/शब्द लिखे जाते थे, पर, पन्ना था मन का।'

एक अन्य सॉनेट में उनकी ध्वनि इसी प्रकार से गूँजती है जब वह 'माँ, माटी, मानुष' में लिखते हैं—'अंधी दौड़ें इस उसके पीछे जो छोड़ो/माँ, माटी, मानुष से खुद का नाता जोड़ो।'

यहाँ हमें दोनों सॉनेट को जोड़ती एक पतली-सी डोर दिखाई देती है। कहीं-न-कहीं वेद मित्र अपने सॉनेट में व्यक्ति को अपने मूल की ओर लौटने की बात करते हैं। वह किस्सों जैसे लोककथाओं के माध्यम से भी हो सकता है और रोजगार तथा प्रवास जैसे गंभीर मुद्दों को उठाकर भी। ये दो सॉनेट शब्दों और वाक्यों में अलग होते हुए भी एक ही आह्वान करते हुए दिखाई देते हैं। मिट्टी की ओर लौटकर ही हम जान सकते हैं कि मौसमों का बदलना क्या होता है? सावन क्या होता है? गुलमोहर के पेड़ को कैसे शहर में काम करता व्यक्ति ठिठककर देखता है और कहता है—'थी लाल हो गई गुलमोहर की पोर-पोर/उस भरी दुपहरी कहीं नहीं थी हरी डाल/क्या देह जली जो निशाँ जले के लाल-लाल/हाँ, दहा गया वह खामोशी से बिना शोर।'

अंधाधुंध शहरीकरण और वृक्षों की कटाई कवि-मन और गुलमोहर दोनों को अकेले खड़ा कर देता है। 'गुल मोहर' शीर्षक से कविता में गुलमोहर एक बिंब की तरह दिखाई पड़ता है, पर उसी के समानांतर वह व्यक्ति के जीवन का दृश्य भी दिखाई देता है। यह गुलमोहर दुष्यंत कुमार के यहाँ कुछ इस प्रकार दिखाई देता है—'जिएँ तो अपने बग़ैचा में गुल-मुहर के तले/मरें तो ग़ैर की गलियों में गुल-मुहर के लिए।'

किसी भी कवि को समकालीन समस्याओं का ज्ञान होना चाहिए तथा उससे जुड़े विषयों पर लिखना उसका कवि-धर्म है। वह धर्म, समाज, राजनीति आदि में पनप रही समस्याओं पर पैनी नज़र रखता है। वेद मित्र अपने समकालीन समाज में व्याप्त कुव्यवस्थाओं पर भी अपना नज़रिया सामने रखते हैं। उनकी कविता किसी एक विचारधारा में बँधती हुई नज़र नहीं आती है। उसका विस्तार तुलसीदास से लेकर शेक्सपियर तक, इंकलाब से लेकर प्रेम तक, तथा माँ, मिट्टी और मनुष्य से लेकर शहर की इमारतों के बीच अंतर्द्वंद्व में पड़े मनुष्य तक है। आषाढ़, सावन आदि मौसमों का बदलना उनकी कविताओं में दिखाई देता है।

सॉनेट विधा में वाक्य-भंग की एक प्रथा रही है जो हमें शेक्सपियर, मिल्टन, त्रिलोचन में भी दिखाई पड़ती है और वेद मित्र के यहाँ भी। वेद मित्र आवश्यकतानुसार वाक्यों को तोड़ते हैं। वह यह ध्यान रखते हैं कि वाक्य भंग से कविता की लय बाधित न हो। सहज भाषा में सहज कविताओं को लिखना उनकी विशेषता है जिस कारण से यह संग्रह पठनीय है।

अंत में कविता पर बात करते हुए वेद मित्र के ही एक सॉनेट की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय होंगी जो आज के वक्त में भी प्रासंगिक है—'रोजी-रोटी कविता भी कब दे पाती है?/कितने भूखे कब यारा! जो कविता गाते?/भूखे को कविता क्या कोई बहलाती है?/ऐसे ढेरों हैं सवाल जो पूछे जाते।'

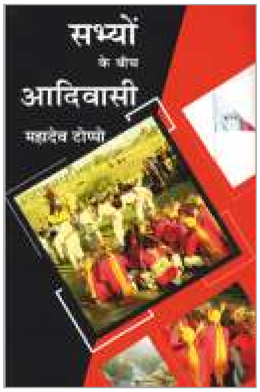

समीक्षक : **मोहन शर्मा**

लेखक : **महादेव टोप्पो**

प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली।

पृष्ठ : 248

मूल्य : रु. 600/-

सभ्यों के बीच आदिवासी

» किसी क्षेत्र विशेष की पहचान होते हैं— वहाँ के मूल निवासी। उन्हीं के तौर-तरीके, परंपरा, संस्कृति, भाषा आदि ही उस स्थान की प्राचीनता के प्रमाण होते हैं। भारत में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, बिहार, झारखंड, ओडिशा, राजस्थान, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, मिजोरम आदि राज्यों में आदिवासी रहते हैं, जिनके लिए आधिकारिक तौर पर 'जनजातीय' शब्द का उपयोग किया जाता है। लेखक महादेव टोप्पो की यह पुस्तक इसी समुदाय विशेष के जन-सरोकारों, सामाजिक, आर्थिक और इतिहास के मुद्दों, उनकी भाषा, साहित्य, संस्कृति, गीत-संगीत, सिनेमा, कला, खेल, आदिवासी समाज से जुड़ी पत्रकारिता, आधुनिक भारत के निर्माण में समुदाय के सहयोग, कुछ महत्वपूर्ण संस्मरण, परिचर्चा आदि के पन्नों को पलटती है।

स्वयं आदिवासी परिवार से संबंध रखने के कारण लेखक ने समाज से कुछ हद तक पिछड़े या कहें, कुछ दशकों पहले से व्यस्त आम जन-जीवन का हिस्सा बने आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक, साहित्य, संस्कृति, परंपरा आदि को इस संवाद के जरिये पाठकों के समक्ष बखूबी प्रस्तुत किया है। अपने पत्रकार-जीवन से प्रेरणा लेकर लेखक ने 80-90 के दशक से जितने लेख, संस्मरण आदि आदिवासी जीवन को आधार बनाकर लिखे, वे सब इस पुस्तक में संकलित हैं। आदिवासी जीवन से जुड़े इन लेखों ने बड़े-बड़े समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, शोध-पत्र आदि की शोभा बढ़ाई। साक्षर होने के बाद आदिवासी जीवन के इतिहास तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अध्ययन में उपजी अभिरुचि के कारण उन्हें सभ्य समाज में कदम रखने का अवसर मिला। उन्होंने अनेक समस्याओं, मुद्दों, सवालों, परिस्थितियों एवं जटिलताओं को अनुभव किया, जिससे लेखक को अपने लेखन के माध्यम से सभ्य समाज से संवाद करने की प्रेरणा मिली। पुस्तक के आरंभ में मुद्रित भी किया गया है कि संवाद की इस कड़ी में जनजातीय भाषा, साहित्य, संस्कृति के सवालों के अलावा

तकनीक, ग्रामीण विकास, सिनेमा, हॉकी, क्रिकेट, कंप्यूटर, शिक्षा, पत्रकारिता, गृह-निर्माण, भोजन जैसे जीवन से जुड़े अनेक विषयों के बारे में लिखा गया है।

लेखों को रचनात्मक शीर्षक देना सुखद है। पुस्तक में संकलित 75 लेखों को नौ खंडों में विभाजित किया गया है। आरंभ में लेखक ने उत्तर-पूर्व की उस अद्‌भुत संस्कृति पर विचार किया है, जिसमें बाँस की सौंदर्यता के दर्शन हैं, संग में सोफा सेट, कुरसी, मेज, मूढ़े आदि उपयोगी सामान व कलाकृतियों सहित बामहुम वाद्ययंत्र को मिली अंतरराष्ट्रीय ख्याति, असम बम्बू बैंड के गठन आदि की भी विशेष सराहना की गई है। महादेव जी के इन लेखों में आदिवासी जीवन में हुए विकास की गाथा का वर्णन बड़े ही सहज और सरल शब्दों में है। उनके ये लेख आह्वान करते हैं कि सभ्य समाज के बीच आदिवासी लोगों को कितना संघर्ष करना पड़ता है, उन्हें सामान्य जीवन का आनंद लेने के लिए किस-किस चीज की जरूरत होती है, उनमें असंतोष का भाव क्यों पैदा होता है?

'भाषा, साहित्य, संस्कृति' खंड में लेखक आदिवासी साहित्य के समक्ष आने वाली चुनौतियों का भी हवाला देते हैं और एक कुशल मार्गदर्शक के रूप में इस दिशा में क्या-क्या प्रयास हो सकते हैं, इस पर भी गहराई से सोच-विचार करते हैं। उनका एक लेख पुस्तक संस्कृति का विकास कैसे किया जाए, इस पर प्रकाशकों और पाठकों दोनों की मानसिकताओं का उचित विश्लेषण प्रस्तुत करता है। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि शीर्षक रचनात्मक हैं, इसका अंदाजा 'भविष्य आदिवासी साहित्य का' शीर्षक से भी लगाया जा सकता है।

'हम आदिवासियों के बारे में क्या जानते हैं?' शीर्षक के अंतर्गत महादेव जी के मन में असंतोष की भावना भी साफ-साफ झलकती है, जब उन्हें आदिवासियों से संबंधित लेखों की छानबीन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि रचनाएँ अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर तैयार की गई हैं। उन रचनाओं में प्रयुक्त आदिवासियों से संबंधित शब्दों को बारीकी से देखने पर स्पष्ट प्रमाणित होता है कि आदिवासी नाम व शब्दों का अशुद्ध उच्चारण एवं लेखन अंग्रेजी अनुकरण का ही परिणाम है।

पुस्तक में आदिवासी इतिहास को समझने के उपकरणों पर भी संवाद है, जिसमें लेखक का अनुभव भारतीय विद्वानों की आदिवासियों के प्रति स्थिति को स्पष्ट करता है। आगे लेखक लोकगीतों पर आदिवासियों के हक की बात करते हैं और आधुनिक संदर्भ में आदिवासी गीत एवं नृत्य की प्रासंगिकता भी व्यक्त करते हैं। सिनेमा और कला क्षेत्र में आदिवासियों को लेकर जो काम हुए, लेखक ने उन्हें भी अपनी पुस्तक में स्थान दिया है। साथ ही, इसमें राष्ट्रीय स्तर के उभरते आदिवासी कलाकारों ने समाज की सांस्कृतिक परंपराओं से प्रेरित होकर अपनी कलाकृतियों में देशज स्पर्श देकर समाज की बेबसी, पीड़ा, आक्रोश, विद्रोह आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।

इसके अलावा पुस्तक में खेल, पत्रकारिता, आधुनिक तकनीक एवं समाज में जिस तरह लेखों को वर्गीकृत किया है, वह सराहनीय है। इस तरह यह पुस्तक पाठकों के सामने सभ्यों के बीच आदिवासी के प्रशंसनीय जीवन का संवाद प्रस्तुत करती है।

माननीय वित्त राज्य मंत्री ने किया पुस्तक विमोचन

"अज्ञात स्वतंत्रता सेनानियों पर प्रकाशित की जाने वाली पुस्तकें हमारे समाज के लिए मार्गदर्शक का कार्य करेंगी। ऐसी पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन ही स्वतंत्रता सेनानियों के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी।" उक्त उद्गार माननीय केंद्रीय वित्त राज्य मंत्री डॉ. भागवत किशन कराड ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित और डॉ. एस.सी. मिश्रा द्वारा लिखित पुस्तक 'क्वेस्ट फॉर स्वराज : हिस्टोरिकल जर्नी ऑफ ए नेशनलिस्ट प्रिंस' के विमोचन के अवसर पर व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि महाराजा किशन सिंह पर प्रकाशित इस पुस्तक में उनके समाज सुधार को आदर्श मानते हुए देशहित और समाजोन्मुख कार्य करने चाहिए।

इस अवसर पर न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि महाराजा किशन सिंह पर पूर्व में कोई साहित्य नहीं प्रकाशित किया है। यह पुस्तक विरासत का कार्य करेगी। किशन सिंह जी देश के पहले राजा हैं जिन्होंने प्राइमरी शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। उन्होंने भरतपुर रियासत में सबसे पहले अछूतों को मंदिर में प्रवेश कराया। उनका जीवनकाल केवल 30 वर्षों का था। वह भी उन्होंने स्वधर्म और राजधर्म के लिए जिया। श्री मलिक ने देश में पुस्तक प्रोन्नयन में संलग्न न्यास के प्रकाशन और दायित्व पर भी चर्चा की। पुस्तक के लेखक डॉ. एस.सी. मिश्रा ने कहा कि यह पुस्तक महलों में पले-बढ़े महाराजा किशन सिंह पर है। उन्होंने भरतपुर रियासत में कई सामाजिक-धार्मिक सुधार किए। वह भी तब जब देश में कोई भी रियासत अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं खड़ी होती थी। उन्होंने स्वराज के दो पक्षों को माना है। पहला, सुधार और दूसरा, सृजन। उन्होंने समाजोत्थान के लिए बालविवाह पर रोक लगाई, विधवा विवाह कराया और सबसे बड़ी बात सन् 1926 में लक्ष्मण मंदिर में हरिजनों का प्रवेश कराया।

इस अवसर पर प्रख्यात अधिवक्ता और कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि श्री धर्म गोपाल चतुर्वेदी ने कहा कि महाराज किशन सिंह ने हिंदू-मुस्लिम एकता और समरसता के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया जिसने आगे चलकर स्वराज में महती भूमिका निभाई। महाराजा किशन सिंह की पोती श्रीमती रोहिणी ग्रेवाल ने कहा कि महाराजा ने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार किए। उन्होंने केवल 10 वर्षों के कार्यकाल में देश की संस्कृति और समाज-सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। समारोह में संयुक्त सचिव, वित्तीय सेवाएँ विभाग, वित्त मंत्रालय श्री सौरभ मिश्रा ने अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

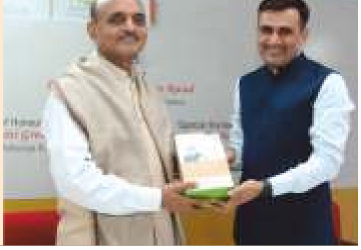

पुस्तकें मिलीं

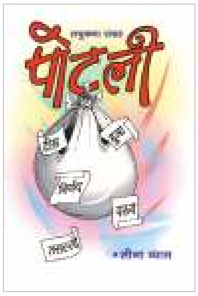

पोटली

सीमा व्यास

यह पुस्तक 89 लघुकथाओं का संग्रह है। छोटी-छोटी कहानियाँ महत्वपूर्ण संदेश देती हैं जिन्हें जीवन की गतिविधियों के साथ जोड़ दिया गया है। भाव और कथ्य का अद्भुत संतुलन प्रदर्शित करती ये कथाएँ, जीवन से जुड़े तमाम प्रश्नों का उत्तर देती हैं और कलात्मक ढंग से उनका विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं।

वनिका पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृ. 112; रु. 180.00

आइने इधर भी हैं

फूलचंद मानव

यह पुस्तक लेखक की 160 कविताओं का संग्रह है। समाज और मनुष्य का प्रतिनिधित्व करती ये कविताएँ सामाजिक सरोकारों से जुड़ती हैं, उनका महत्व प्रदर्शित करती हैं। यह काव्य-संग्रह विभिन्न मानवीय मूल्यों तथा संवेदनाओं की परिणति है। इसमें परिवार, सच, बचपन, जीवन, यात्रा, पर्यावरण, भाषा आदि विषयों पर कविताएँ संगृहीत हैं।

शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।

पृ. 160; रु. 325.00

कर्ज़ा वसूली

गिरिजा कुलश्रेष्ठ

इस पुस्तक में 13 कहानियाँ संगृहीत हैं। सामाजिक ताने-बाने में बुनी गई ये कहानियाँ जीवन तथा समाज के काले सच को उजागर करती हैं। इस संग्रह की कुछ कहानियाँ अपने-अपने कारावास, कर्जा-वसूली, शपथ-पत्र, एक मौत का विश्लेषण, नामुराद आदि हैं। ये कहानियाँ मानवीय मूल्य, संवेदना तथा यथार्थ का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

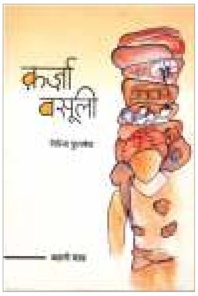

बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृ. 172; रु. 175.00

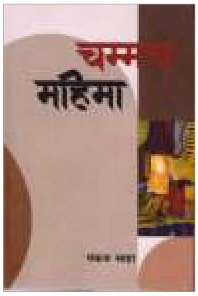

चम्मच महिमा

पंकज साहा

यह पुस्तक समय व समाज के विविधवर्णी यथार्थ को सामने लाने के लिए लिखे गए 36 व्यंग्यों का संग्रह है। समय, समाज और सत्ता की विसंगतियों पर चोट करते ये व्यंग्य जनपक्षीय सरोकारों की वकालत करते हैं। लेखक ने 'चम्मच' शब्द का बहुसंदर्भी व बहुक्षेत्रीय प्रयोग करते हुए समकालीन विभिन्न चरित्रों को उद्घाटित व परिभाषित करने का सफल प्रयास किया है।

आनंद प्रकाशन, कोलकाता।

पृ. 120; रु. 275.00

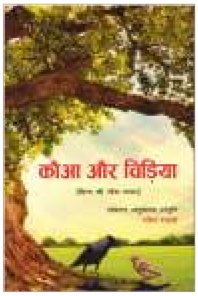

कौआ और चिड़िया

(सिंध की लोक-कथाएँ)

संकलन, अनुवाद, प्रस्तुति : **रश्मि रमानी**

यह पुस्तक लोकप्रचलित 15 सिंधी कहानियों का संकलन है। रहस्य तथा रोमांच के साथ-साथ इसमें लोक जीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है। यह कहानी-संग्रह वर्षों से मौखिक रूप से चली आ रही कहानी की विरासत को लेखनीबद्ध करने का एक सार्थक प्रयास है।

स्केन कम्प्युटर्स, अहमदाबाद।

पृ. 238; रु. 500.00

गांधी और अंबेडकर

अमलेश राजू

यह पुस्तक गांधी तथा अंबेडकर पर केंद्रित विभिन्न विद्वानों के विचारों का संकलन है। पुस्तक सदी के दो महानायकों के मूल्यों से परिचय कराने के साथ-साथ पाठक को यह भी समझाने का प्रयास करती है कि गांधीजी तथा अंबेडकर में किन-किन बिंदुओं में प्रगाढ़ता थी तथा किन-किन बिंदुओं में मतभिन्नता।

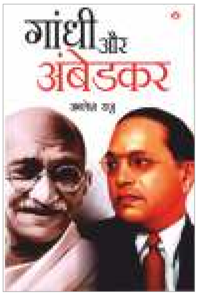

डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली।

पृ. 186; रु. 195.00

सत्तावन कविता स्वप्न

(प्रेम कविताएँ)

रश्मि रमानी

यह पुस्तक 57 कविताओं का एक कविता-संग्रह है। इसकी कविताएँ स्त्री विमर्श की नारेबाजी और कोलाहल से परे ऐसी स्त्री की कविताएँ हैं जिनमें स्त्री की मौजूदगी न सिर्फ घर को घर बनाती है, अपितु पुरुष के जीवन में भी आशा और प्रेम का संचार करती है। इस संग्रह में प्रेम, औरत, चाहत, हसरत आदि विषयों पर कविताएँ लिखी गई हैं।

सभ्या प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 120; रु. 300.00

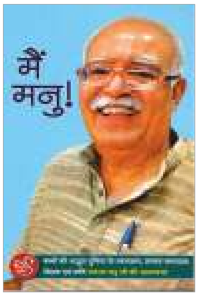

मैं मनु

प्रकाश मनु

यह पुस्तक सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार प्रकाशन मनु की आत्मकथा है जो उनके बचपन की यादों की पगडंडियों को समेटती है और बहुत सारे उतार-चढ़ाव, अनगिनत किस्से-कहानियों और स्मृतियों से रू-ब-रू कराती है। पुस्तक 32 अध्यायों में विभाजित है। पुस्तक में बताया गया है कि माँ और नानी से सुनी कहानियों ने कैसे उनके बाल साहित्य लेखन का मार्ग प्रशस्त किया।

श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 320; रु. 399.00

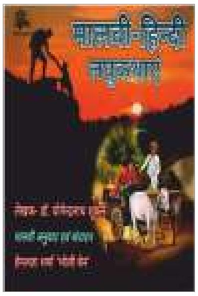

मालवी-हिंदी लघुकथाएँ

डॉ. योगेन्द्रनाथ शुक्ल

मालवी अनुवाद एवं संपादन :

हेमलता शर्मा 'भोली बेन'

यह पुस्तक मूलतः मालवी भाषा में लिखित 45 लघुकथाओं का संग्रह है। ये कहानियाँ मजेदार होने के साथ-साथ परिवार तथा समाज के विविध स्वरूपों को प्रकट करती हैं। इसमें सहमति, कुटुंब, कलाकार, पछतावा, तोहफे, ईर्ष्या, कपट आदि शीर्षक से कहानियाँ संगृहीत हैं।

प्रिन्सेप्स प्रकाशन, छत्तीसगढ़।

पृ. 104; रु. 200.00

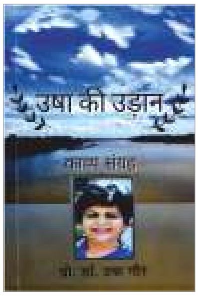

उषा की उड़ान

डॉ. उषा गौर

इस कविता संग्रह में पारिवारिक संबंधों तथा मानुषिक संवेदनाओं को नवीन आयाम देने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में सच्चा गुरु, बाबूजी को श्रद्धांजलि, माँ का अक्स, बेटी के नाम संदेश, अहमियत आदि शीर्षक से कविताएँ संकलित हैं। जीवन का प्रत्येक पहलू इन कविताओं में प्रकट होता है।

श्री विनायक प्रकाशन, इंदौर।

पृ. 158; रु. 250.00

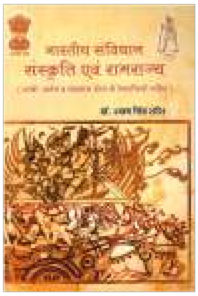

भारतीय संविधान संस्कृति एवं रामराज्य

डॉ. श्याम सिंह शशि

यह पुस्तक भारतीय संविधान को आकर्षक स्वरूप प्रदान करने वाले नंदलाल बोस तथा उनके साथियों के रेखाचित्रों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसके साथ-साथ पुस्तक में संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के परिप्रेक्ष्य में शैव एवं राम-संस्कृति का परिचय अनौपचारिक शैली में दिया गया है। यह पुस्तक गांधीजी के रामराज्य की संकल्पना को नवीन परिदृश्य प्रदान करती है।

किताब घर, नई दिल्ली।

पृ. 160; रु. 225.00

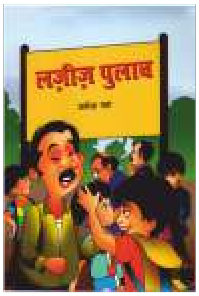

लज़ीज़ पुलाव

राकेश चक्र

यह पुस्तक 16 बाल कहानियों का संग्रह है। ये बाल-कहानियाँ काफी मनोरंजक ढंग से विभिन्न विषयों को बच्चों के सम्मुख रखती हैं। पुस्तक बाल मन को देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत करने के साथ ही उन्हें कर्मयोगी बनने की प्रेरणा देती है। ये कहानियाँ बच्चों को ईमानदारी, सच्चाई एवं एक-दूसरे के प्रति आदर-सम्मान रखने के बारे में भी प्रेरणा देती हैं।

प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।

पृ. 74; रु. 110.00

चुनौतीपूर्ण रहा मालवी-निमाड़ी में बाल साहित्य का अनुवाद

मालवी और निमाड़ी बोली बोलने वाले कोई दो करोड़ लोगों के बीच क्षेत्र बदलते ही भाषाई विविधता, बोलने के तरीकों में अंतर तथा किसी मानक स्वरूप का न होना जैसी चुनौतियों के बावजूद इंदौर के दस अनुवादकों ने नई शिक्षा नीति के अनुरूप तैयार 20 पुस्तकों के अनुवाद का कार्य तीन दिनों में संपन्न किया। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर के संयुक्त तत्वावधान में मालवी और निमाड़ी अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला 24 से 26 अप्रैल, 2022 तक आयोजित की गई। इस कार्यशाला में अनुवाद के साथ-साथ शब्दों की एकरूपता, शुद्धता, संपादन पर गंभीर विमर्श हुए। तदुपरांत पांडुलिपियों का टंकण और डमी बनाने का कार्य भी किया गया। कार्यशाला की संयोजक डॉ. मीनाक्षी स्वामी थीं।

कार्यशाला की शुरुआत में मालवी व निमाड़ी की आज के समय की जरूरत, संरक्षण और उसके प्रसार पर विमर्श हुआ। अनुवाद में आने वाली चुनौतियों और शब्दावली के प्रयोग को लेकर भी चर्चा हुई। कार्यशाला में अनूदित की जाने वाली पुस्तकें थीं—चंदा गिनती भूल गया, क्यों, पक्की

दोस्ती, आनंदी का इंद्रधनुष, भक्त सालबेगा, दोस्त, फु-कू : दूसरे ग्रह का यात्री, मैं तुमसे अच्छा हूँ, मुझे दुनिया पसंद है, लालू और लाल पतंग, लंबा और छोटा : बड़ा और छोटा, एक दिन, रूपा हाथी, फूल और मधुमक्खी, क्या हुआ!, पेड़ क्या है, मीता और उसके जादुई जूते, बस्तर की अमावस्या, बस्तर का मोगली, बस्तर के त्योहार। निमाड़ी भाषा के अनुवादक के रूप में श्रीमती पुष्पा दसौंधी, डॉ. मीना साकल्ले, श्रीमती सीमा व्यास, श्रीमती तनुजा शर्मा, श्री गोविंद सेन और मालवी भाषा के अनुवादक के रूप में श्री अरविंद जोशी, सुश्री विभा व्यास, श्री विश्वास व्यास, श्री मनोहर दुबे, श्रीमती हेमलता शर्मा सहभागी रहे। प्रत्येक अनुवादक ने दो-दो पुस्तकों का अनुवाद किया। कार्यशाला के समापन अवसर पर श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के प्रधानमंत्री प्रो. सूर्य प्रकाश चतुर्वेदी उपस्थित रहे।

चूँकि बाल साहित्य का और वह भी द्विभाषी पुस्तकों के रूप में (हिंदी-मालवी, हिंदी-निमाड़ी या फिर अंग्रेजी-मालवी, अंग्रेजी-निमाड़ी) यह सभी का पहला अनुभव था, अतः सभी सहभागी अनुवादकों के लिए यह भविष्य में अपनी बोली-भाषा के विकास का नया प्रयोग रहा। कुछ सहभागियों ने इस कार्यशाला के दौरान आने वाली चुनौतियों पर अपने अनुभव साझा किए हैं—

अनुवाद की दृष्टि से किसी मानक भाषा का दूसरी मानक भाषा में शब्द, अर्थ या भाव आधारित अनुवाद करने का प्रचलन है। किसी भाषा के मानक रूप से बोली का अनुवाद करना तनिक भिन्न है। अतः यह जरूरी होगा कि तकनीकी रूप से शुद्धता और अनुवाद के मानकों का ध्यान रखा जाए।

यहाँ अनुवाद की विषय-वस्तु बच्चों की पुस्तकें थीं। हमारे समाज की वे नई कोपलें जो बस अभी-अभी भाषा को लिखित स्वरूप में पढ़कर समझने की तरफ पहला कदम उठा रही हैं। विषय-वस्तु को क्लिष्ट या साहित्यिक स्वरूप के बजाय बच्चों की समझ और बाल मनोवृत्ति के अनुकूल बनाना प्रारंभ में आसान प्रतीत हो रहा था। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि यह काम जितना सहज लग रहा है, उतना है नहीं क्योंकि चुनौती न केवल मालवी के शब्द संस्कार अनुवाद में कायम रखने की थी, बल्कि बच्चों के लिहाज से विषय-वस्तु की पठनीयता और रोचकता बनाए रखने की भी थी। साथ ही, एक बड़ी मानसिक बाधा अनुवाद को लेकर पूर्व अनुभवों की भी थी। जहाँ शब्द कौशल और वाक्य विन्यास में विशिष्टता रखना एक अनिवार्य शर्त थी।

—**विश्वास व्यास**, देवी अहिल्याबाई विश्वविद्यालय, इंदौर में मालवी-निमाड़ी पीठ के प्रमुख व चर्चित लेखक

एक ही शब्द के अनुवाद हेतु चार-पाँच बोली के शब्द उपलब्ध थे और यह चुनौतीपूर्ण इसलिए रहा कि वे चारों-पाँचों शब्द बोली के हिसाब से सही हैं, किंतु उनमें से एक मानक शब्द का चयन करना और उस पर अनुवाद पैनल में सहमति बनना कठिन कार्य था। गहन विवेचन और विस्तृत विमर्श के पश्चात शब्दों का चयन किया गया। शब्दों के चयन में यह भी ध्यान रखा गया कि इन पुस्तकों का पाठक वर्ग छोटे बच्चे हैं तो अनुवाद कहीं इतना क्लिष्ट न हो जाए कि वह बच्चों में क्षेत्रीय बोलियों के पठन-पाठन में रुचि जगाने के स्थान पर उन्हें बोली से पलायन ही करवा दे।

—**सुश्री हेमलता शर्मा 'भोली बेन'**, मालवी लेखिका, इंदौर

मालवी मालवा की लोकभाषा है जिसने आज तक तो अपने अस्तित्व को बनाए रखा है, पर भारत की अन्य लोकभाषाओं की तरह यह भी लुप्तप्राय होने की कगार पर है। इसकी समस्या यह है कि व्यापक जनाधार होते हुए भी इसमें लिखित साहित्य की परंपरा नहीं है।

बच्चे जब ये पुस्तकें मालवी में पढ़ेंगे, तो उन्हें लगेगा कि मालवी सिर्फ बोलने की भाषा ही नहीं है, इसमें लिखा-पढ़ा भी जा सकता है और इससे हो सकता है कि वे भविष्य में स्वयं भी मालवी में लिखने के लिए प्रेरित हों।

—**अरविंद कुमार जोशी**, पूर्व अपर महाप्रबंधक, बी.एच.ई.एल.

बाल साहित्य की रचना प्रक्रिया अलग ही होती है। बच्चों की बुद्धि के अनुरूप चित्रों और पाठ्य सामग्री का अनुपम संयोजन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

की पुस्तकों की विशेषता है। ऐसी स्तरीय पुस्तकों का मालवी में अनुवाद करना चुनौतीपूर्ण था। पहली समस्या आई शब्दों के चयन की। मालवी में स्थानीय प्रभाव और मुख सुख के चलते एक ही अर्थ के विभिन्न शब्द ध्यान में आ रहे थे। दूसरी समस्या मालवी के उच्चारण में भेद की वजह से मानक शब्द लिखने की थी, जैसे—कई शब्दों में 'क' के स्थान पर 'ख' का प्रयोग करना। इसी प्रकार परस्पर चर्चा से कुछ नए अर्थात प्रचलन से दूर हो गए मालवी शब्द ध्यान में आए और प्रयोग भी किए गए।

पाठ्यपुस्तक से इतर जब बच्चा कुछ पढ़ने की शुरुआत कर रहा हो तब यह जरूरी हो जाता है कि उसकी रुचि और पाठ्य का संदेश दोनों ही बरकरार रखे जाएँ।

—**विभा व्यास**, नए मीडिया पर लेखन में उभरता नाम

नई शिक्षा नीति के अनुसार बच्चों को एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान होना, उनकी क्षमता में वृद्धि करता है। दूसरी भाषा, जो उनकी बोली हो, उसमें पढ़ने के लिए रोचक और मनोरंजक साहित्य उपलब्ध होना सोने पर सुहागा होगा। इसी उद्देश्य को लेकर हिंदी/अंग्रेजी में प्रकाशित बाल कहानियों का निमाड़ी अनुवाद पाँच भाषा विशेषज्ञ सदस्यों के समूह द्वारा किया गया।

पहली चुनौती थी निमाड़ी अनुवाद में हिंदी के शब्दों के समकक्ष अर्थ पैदा करने वाले निमाड़ी शब्दों को तलाशना, क्योंकि भावानुवाद ही बच्चों को कहानी का सही आनंद दे पाएगा।

उचित शब्द का चुनाव करना भी चुनौतीपूर्ण था। 'और' जैसे शब्द के लिए 'अरु' और 'न' दोनों का प्रयोग होता है। 'पास' के लिए 'धड़', 'नजिक', 'जोड़' आदि का प्रयोग होता है। सबकी सहमति से एक शब्द का चुनाव किया गया।

—**सीमा व्यास**, नवसाक्षर अभियान से जुड़ी लेखिका

भाषा अपने साथ खान-पान, वेशभूषा, तौर-तरीके के संस्कार साथ लेकर चलती है। इन संस्कारों को पल्लवित करने के उद्देश्य से 06-10 वर्ष के बालकों के लिए अनुवाद करना एक चुनौती भरा कार्य था। एक समस्या यह थी कि बालक बहुत कम अक्षर पहचान पाता है। उसे अनुस्वार, अनुनासिक की भी पर्याप्त जानकारी नहीं होती। अतः ऐसे शब्दों का चयन किया गया जिसे बालक आसानी से पढ़ और समझ सके।

पूर्वी और पश्चिमी निमाड़ के शब्दों के उच्चारण में भिन्नता आ जाती है। इस हेतु पाँच सदस्यों की सहमति बनने पर ही एक उच्चारण का चयन किया गया। पुस्तकें एकरूप हों, इसके लिए सभी सदस्यों ने अनुवाद की गई सभी 10 पुस्तकें पढ़ीं और उनके शब्दों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात अंतिम रूप दिया।

—**तनुजा शर्मा**, लेखिका व अनुवादक

इस कार्यशाला में अनुवाद के साथ-साथ शब्दों की एकरूपता, शुद्धता और संपादन के विषय में भी गंभीर विमर्श हुआ। विचार करने पर कई चुनौतियाँ सामने आईं।

हमें बच्चों की द्विभाषी किताब के लिए अनुवाद करना था। चूँकि बच्चों को जो हिंदी वर्णमाला सिखाई जाती है, उसमें विलंबित अ 'ऽ' और

'ळ' नहीं है इसलिए अनुवाद के समय इनका प्रयोग नहीं किया गया। निमाड़ी में इ, ई, क और ख की विविधता भी है। एक क्षेत्र में 'ओके' बोलते हैं तो दूसरे क्षेत्र में 'ओखे', उसी तरह कहीं 'इ' बोला जाता है और कहीं 'ई'। मानकीकरण का आधार तो बोला जाने वाला उच्चारण ही होगा। इसलिए प्रचलित सभी रूपों को मान्यता देना उपयुक्त होगा। ठेठ निमाड़ी के शब्दों पर जोर देना नई पीढ़ी के लिए शायद उपयुक्त न हो। भाषा में ग्रहणशीलता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

—**गोविंद सेन**, निमाड़ी भाषा विशेषज्ञ

इस कार्यशाला में मध्य प्रदेश की प्रमुख निमाड़ी एवं मालवी बोली में अनुवाद किया जाना था। कार्यशाला में प्रथम दिन ही यह बताया गया कि प्राथमिक स्तर के बालकों के लिए तैयार की जाने वाली ये पुस्तकें हैं, अर्थात् बाल साहित्य। छोटे-छोटे बच्चों की उम्र के अनुसार ही अनुवाद की भाषा-शैली भी अपनाई जाए जो कि क्लिष्ट न हो और बच्चा पढ़ते समय शब्दों की दुविधा में न रहे।

जिन पुस्तकों का अनुवाद किया जाना था, वे द्विभाषी अर्थात हिंदी एवं अंग्रेजी में थीं। उसी को ध्यान में रखकर अनुवाद किया गया।

—**डॉ. मीना साकल्ले**, लेखिका व पूर्व प्राध्यापक

अबू धाबी अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने संयुक्त अरब अमीरात की राजधानी में आयोजित 'अबू धाबी अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला, 2022' में सक्रिय सहभागिता दर्ज कराई। यह मेला 24-29 मई, 2022 तक आयोजित किया गया। इस आयोजन में 35 से अधिक भारतीय प्रकाशकों का प्रतिनिधित्व राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने किया।

न्यास द्वारा विभिन्न विधाओं में प्रकाशित पुस्तकें पुस्तक प्रेमियों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहीं। इससे पहले भारत के साहित्य को दुनिया के सामने लाने वाले संयुक्त अरब अमीरात में भारत के माननीय राजदूत श्री संजय सुधीर न्यास ने स्टॉल का उद्घाटन किया। न्यास का प्रतिनिधित्व डॉ. संचित त्यागी, संयुक्त निदेशक और श्री ब्रतिन डे, सहायक संपादक ने किया।

विश्व पुस्तक दिवस पर पुस्तक लोकार्पण

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत तथा श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के संयुक्त तत्वावधान में 23 अप्रैल, 2022 को 'विश्व पुस्तक दिवस' के अवसर पर हिंदी साहित्य समिति के सभागार में न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'मकड़ियों का अद्भुत संसार' पुस्तक का विमोचन किया गया। कार्यक्रम के प्रारंभ में पुस्तक के लेखक प्रो. विपुल कीर्ति शर्मा ने पुस्तक की विकासयात्रा की जानकारी दी कि किस तरह अमरावती के जंगलों में उनकी मकड़ियों से मित्रता हुई। उन्होंने बताया कि आम लोगों के लिए भय का कारक मकड़ियाँ कैसे शोध का विषय बनीं। यह पुस्तक पढ़कर हम उनके व्यवहार, परिवेश के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रसिद्ध विज्ञान लेखक व शिक्षाविद् डॉ. किशोर पंवार ने कहा कि मकड़ियों पर बनी फिल्में हमें अनोखी दुनिया में ले जाती हैं। यह पुस्तक लोक विज्ञान पर आधारित है। शिक्षाविद् श्री सुशील जोशी ने कहा कि इंदौर जीवन-विज्ञानियों का शहर है। यहाँ के लेखकों ने विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाया है। इसी परंपरा का निर्वहन पुस्तक के लेखक प्रो. विपुल कीर्ति शर्मा ने इसे सहज और सरल भाषा में लिखकर इस महती कार्य को पूरा करने में अहम भूमिका निभाई है।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. सुरेश टी. सिलावट, प्राचार्य, शासकीय होल्कर महाविद्यालय, इंदौर ने पुस्तक के लेखक को बधाई देते हुए कुछ अध्यायों पर चर्चा की। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के प्रधानमंत्री प्रो. सूर्य प्रकाश चतुर्वेदी ने कहा कि आज के इस दौर में युवा वर्ग का रुझान पुस्तक और वाचनालय से दूर हो गया है। इंटरनेट के जमाने में जानकारी तो मिलती है, लेकिन ज्ञान मिलना बंद हो गया। छपा हुआ अक्षर अक्षुण्ण है। पुस्तक की खुशबू का आनंद वही समझ सकता है जो पुस्तक प्रेमी है। इस अवसर पर मकड़ियों पर बनी फिल्म का प्रदर्शन भी किया गया।

कार्यक्रम के अंत में 'वीणा' पत्रिका के संपादक श्री राकेश शर्मा ने आभार व्यक्त किया। संचालन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के हिंदी भाषा के संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी ने किया।

त्रिदिविसीय कोंकणी अनुवाद कार्यशाला आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा डोना पाउला में इंटरनेशनल सेंटर गोवा में 11 से 13 अप्रैल, 2022 तक बच्चों की पुस्तकों का अंग्रेजी से कोंकणी भाषा में अनुवाद हेतु एक त्रिदिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रख्यात लेखक और ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता दामोदर (भाई) मौजो ने अपने उद्घाटन भाषण में गुणवत्तापूर्ण अनुवाद की कमी पर प्रकाश डालते हुए कहा कि एक अच्छी पुस्तक का खराब अनुवाद उसके भाव को समाप्त कर सकता है। उन्होंने कहा कि अनुवादक की भूमिका काफी अहम होती है। एक अनुवादक की यह जिम्मेदारी है कि वह अनूदित पुस्तक के सार और भाव को बनाए रखे। साथ ही उन्होंने साहित्यकारों और लेखकों को समय के अनुसार बदलाव की ओर भी ध्यान आकृष्ट कराया। उन्होंने कहा कि समय के साथ साहित्यकारों खासतौर पर बाल साहित्यकारों की लेखन शैली बदली है।

इस अवसर पर कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने साहित्य के प्रोन्नयन में संलग्न देश के सर्वोच्च निकाय अर्थात राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के नए कार्यक्रमों और प्रधानमंत्री युवा लेखक योजना पर चर्चा की। कार्यशाला में 10 अनुवादकों ने 20 पुस्तकों का कोंकणी भाषा में अनुवाद किया। इस अवसर पर गोवा कोंकणी अकादमी के अध्यक्ष डॉ. अरुण सखरदांडे और कार्यशाला के समन्वयक डॉ. भूषण भावे, कोंकणी सलाहकार बोर्ड साहित्य अकादमी, नई दिल्ली और कार्यशाला के संयोजक, विद्या प्रबोधिनी कॉलेज, परवरी के प्राचार्य उपस्थित थे। वहीं भाषा विशेषज्ञ के रूप में डॉ. रवि मिश्रा और अनुवादक के रूप में सुश्री रेषा रि महाले, सुश्री जान्हवी कोल वालकर, श्रीमती जयंती नायक, डॉ. राजय पवार, डॉ. कॉज्मा फेर्नाडीस, श्रीमती रत्नमाला दिवकर, सुश्री रमा मुरकुंडे, श्रीमती नयना आडारकर, डॉ. प्रकाश पर्येकर, डॉ. रविदास कृ. नाईक उपस्थित रहे।

पेरिस पुस्तक मेला, 2022 में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

"भारत-फ्रांस संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए पुस्तक और संस्कृति से बड़ा कोई माध्यम नहीं है।" यह अभिव्यक्ति फ्रांस में भारत के माननीय राजदूत श्री जावेद अशरफ ने पेरिस पुस्तक मेला, 2022 में भारत मंडप के उद्‌घाटन के दौरान व्यक्त की। उन्होंने कहा कि भारत मंडप में आयोजित होने वाली साहित्यिक गतिविधियाँ भारत की संस्कृति, विविधता, भारत की बहुलता को प्रतिबिंबित करती हैं। फ्रांसीसी कलाकारों द्वारा भारतीय शास्त्रीय और लोक संगीत का प्रदर्शन यह दर्शाता है कि हम एक-दूसरे की संस्कृति से कितनी गहराई से जुड़े हुए हैं। इस महोत्सव में प्रदर्शित पुस्तकों की विविधता फ्रांसीसी पुस्तक प्रेमियों के लिए जीवंत भारतीय सांस्कृतिक विरासत को जानने का अवसर प्रदान करती हैं।

इस अवसर पर भारत में फ्रांस के राजदूत श्री इमैनुएल लेनैन की गरिमामयी उपस्थिति के साथ-साथ न्यास-अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा, न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक, सिंडिकैट नेशनल डी ल'एडिशन (एसएनई) के अध्यक्ष श्री विंसेंट मोंटेगने उपस्थित थे।

न्यास-अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि भारत-फ्रांस संबंध, उनकी सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत लंबे समय से एक-दूसरे से पूरक रहे हैं। रेने डेसकार्टेस जैसे फ्रांसीसी दार्शनिक सदियों से भारत के बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों और विचारकों को वैचारिक रूप से प्रभावित करते रहे हैं। न्यास को फ्रांसीसी यात्री फ्रांस्वा बर्नियर की 'भारत यात्रा' का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो अपने समय की एक प्रमुख ऐतिहासिक पुस्तक मानी जाती है। बर्नियर के अलावा, फ्रांस के कई प्रख्यात यात्रियों, जैसे जीन-बैप्टिस्ट टैवर्नियर और जीन थेवेनोट ने भी

फ्रांसीसी पाठकों के लिए भारत की अपनी यात्राओं के बारे में लिखा है। फ्रांसीसी विचारक रोमेन रोलैंड द्वारा लिखित महात्मा गांधी, रामकृष्ण

देव परमहंस और विवेकानंद पर पुस्तकों के हिंदी अनुवाद भी भारतीय पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय हैं। दूसरी ओर, उपनिषदों की तरह भारतीय ग्रंथ भी फ्रांसीसी लेखकों और विचारकों के लिए अध्ययन का विषय थे, जैसे फ्रांसीसी विद्वान एंक्वेटिल डुपरॉन ने उपनिषदों का फ्रेंच में अनुवाद किया; विक्टर ह्यूगो और हाल ही में अल्बर्ट कैमस जैसे लेखकों ने भी उपनिषदों में निहित विचारों और सिद्धांतों का बार-बार उल्लेख किया है।

न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि पुस्तक मेले और साहित्यिक उत्सव न केवल लेखकों के लिए, बल्कि समाज के लिए भी श्रेष्ठ मंच हैं क्योंकि वे सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण का समर्थन करते हैं। उन्होंने कहा कि हमारी किताबें न केवल जटिल प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली, बल्कि गहन भारतीय मूल्य प्रणाली का भी प्रतिबिंब हैं। भाषाई विविधता हमारे साहित्यिक परिदृश्य की रीढ़ है। नई शिक्षा नीति-2020 के बारे में उन्होंने कहा कि यह माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के दूरदर्शी नेतृत्व में लॉन्च किया गया दस्तावेज है, जो न केवल शिक्षकों, छात्रों और शिक्षाविदों को, बल्कि प्रकाशन के पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के लिए मूल्यवान अवसर प्रदान करता है।

भारत में फ्रांस के माननीय राजदूत, श्री इमैनुएल लेनैन ने कहा कि पुस्तक उत्सव दोनों देशों के संबंधित साहित्य के अनुवाद को बढ़ावा देने के लिए एक अनूठा मंच है। भारत और फ्रांस दोनों ही पुस्तकों और पढ़ने के मूल्य को लेकर विश्वस्त हैं।

श्री विंसेंट मोंटेगने ने कहा कि भारत इस उत्सव में विशिष्ट अतिथि देश होने के नाते भारतीय साहित्य की विविधता और इसकी सांस्कृतिक विरासत के खजाने तक फ्रांसीसी पाठकों की पहुँच को संभव बना देगा।

इस अवसर पर न्यास द्वारा प्रकाशित 10 बच्चों की पुस्तकों— ए टेल ऑफ टेल्स, ए विजिट टू कुंभ, फ्रेंड, हॉलीडे हैव कम, रावन रेमेडी, वासु मीट्स ए टैडपोल, शीला एंड लीला, स्नेक ट्रबल, स्टोरीज फ्रॉम बापू'ज लाइफ, द फ्लावर एंड द बी के फ्रेंच अनुवाद का विमोचन भी किया गया।

भारतीय प्रतिनिधिमंडल में श्रीमती सुधा मूर्ति, डॉ. विक्रम संपत, आचार्य बालकृष्ण, श्री गौराहारी दास, श्री आनंद नीलकंठन, श्री सुधासत्व बसु जैसे कई अन्य प्रतिष्ठित लेखक एवं व्यक्तित्व शामिल थे।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ______________________________

पता : ______________________________

जिला : ____________ शहर ____________ राज्य ____________ पिन कोड ____________

फोन : ____________________ ई-मेल : ____________________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) ____________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) ____________ ड्राफ्ट संख्या ____________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी ____________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000021
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

तीन मलयालम नाटक

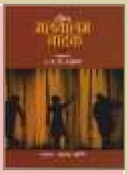

संकलन : **ए.पी.पी. नंपूतिरि**

अनुवाद : **सुधांशु चतुर्वेदी**

यह पुस्तक मलयालम के तीन श्रेष्ठ रचनाकारों एन. कृष्ण पिल्लै, सी.जे. तोमस तथा के.टी. मुहम्मद के नाटकों का संग्रह है। ये नाटक यथार्थ के धरातल पर रचे गए हैं, जिनमें संघर्ष केंद्रीय भूमिका में दिखाई देता है। एक स्त्री की पूर्णता की तलाश में स्वतः से संघर्ष, विदेश में रहने वाले पति तथा जवान पत्नी और उनके परिवार का संघर्ष तथा मुस्लिम समाज की रूढ़ियों से लड़ते एक व्यक्ति का संघर्ष, इन नाटकों की आधारभूमि है।

पृ. 168; रु. 235.00

मय्यषी नदी के किनारे

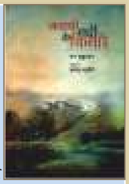

एम. मुकुन्दन

अनुवाद : **सुधांशु चतुर्वेदी**

मलयालम भाषा से अनूदित यह उपन्यास मय्यषी के स्वाधीनता आंदोलन की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों पर केंद्रित है। सभी तरह की विविधताओं, संकलनों और उतार-चढ़ावों से युक्त मय्यषी का एक समग्र चित्र इसमें खींचा गया है। प्रस्तुत पुस्तक में परतंत्र जनता का शोषण, इससे उपजी विकृतियाँ तथा उनसे मुक्ति की कथा का प्रभावशाली वर्णन किया गया है।

पृ. 300; रु. 375.00

मकड़ियों का अद्भुत संसार

विपुल कीर्ति शर्मा

यह पुस्तक मकड़ियों से जुड़े रोचक और वैज्ञानिक तथ्यों को बहुत ही सहज और सरल तरीके से प्रस्तुत करती है। मकड़ियों की उत्पत्ति और विकास का वर्णन करते हुए उनकी विभिन्न प्रजातियों का परिचय देती है। मकड़ियों के रंगीन चित्रों से सुसज्जित यह पुस्तक उनके पारिस्थितिकीय महत्व को भी उजागर करती है।

पृ. 114; रु. 405.00

कुमाउनी लोककला

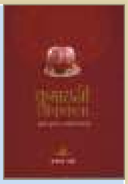

चौक पुराऊँ व देली सजाऊँ

करुणा पांडे

पुस्तक में कुमाउनी लोककला का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसमें धार्मिक प्रतीकों, प्राकृतिक उपादानों तथा आंचलिक विश्वासों को लेकर उनका विस्तृत वर्णन करते हुए उनके पारंपरिक रूपों को सहेजने का प्रयास किया गया है। लुप्त होती कलाओं के संरक्षण तथा सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से यह पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पृ. 222; रु. 350.00

इंदुलेखा

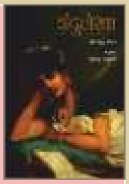

ओ. चंतु. मेनन

अनुवाद : **सुधांशु चतुर्वेदी**

मूलतः मलयालम भाषा में लिखित यह उपन्यास केरल के मातृसत्तात्मक संयुक्त परिवार की पृष्ठभूमि पर केंद्रित है। केरल की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा नायर परिवारों की स्त्रियों की स्थिति को दर्शाते हुए यह दिखाया गया है कि जिन स्त्रियों को अपने भविष्य के बारे में निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं थी, वही स्त्रियाँ कैसे शिक्षा के प्रभाव से आत्मनिर्भर तथा निडर होकर स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो जाती हैं।

पृ. 302; रु. 380.00

कुबेरनाथ राय

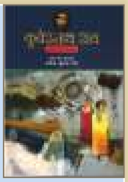

संकलित निबंध

चयन एवं संपादन :

मनोज कुमार राय

यह पुस्तक कुबेरनाथ राय के 21 प्रसिद्ध निबंधों का संग्रह है। पुस्तक तथ्यपरक तथा पौराणिक कथाओं के माध्यम से प्रकृति-बोध के साथ-साथ जल, जंगल, पशु, पक्षी, दिवस, रात्रि और नक्षत्रों पर केंद्रित; 'सप्तऋषि-मंडल' की एक झाँकी प्रस्तुत करती है। पुस्तक पाठकों के लिए भारत तथा भारतीयता के विभिन्न आयामों से परिचय का माध्यम हो सकती है।

पृ. 244; रु. 315.00

जल जीवन का आधार

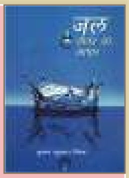

कृष्ण कुमार मिश्र

मनुष्य की उत्पत्ति तथा विकास में जल जितना साधारण है, उसकी भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है, अतः इस पुस्तक में जल के आश्चर्यजनक गुणों के पीछे छिपे विज्ञान की एक झलक दी गई है। पुस्तक आवश्यक चित्रों के साथ, धरती पर जीवन के उद्‌भव, विकास और उसे बरकरार रखने में जल की अहम् भूमिका का सरलता से वर्णन करती है।

पृ. 106; रु. 165.00

nbt.india

एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल :** nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in